चन्दामामा
मार्च १९७२
E. D. 2 PAISE
90 P

चन्दामामा

संस्थापक : नागिरेड्डी
संचालक : 'चक्रपाणी'

जीवन में अगर संघर्ष ही प्रधान हो तो बलवान विजयी होगा और दुर्बल व्यक्ति दब जायगा। लेकिन जीवन में परस्पर सहयोग की प्रधानता हो तो समर्थ व्यक्ति विजयी होता है और साथ ही असमर्थ व्यक्ति को भी विजयी बना देता है। इसीलिए यदि जीवन का विकास होना है तो सहयोग की नितांत आवश्यकता है। यह नीति हमें "आपसी मदद" नामक बेताल कथा में मिलती है। दो भाई परीक्षा में हारकर भी सहयोग के कारण विजयी होते हैं।

वर्ष : २४ मार्च १९७२ अंक : ७

अमर वाणी

कोअन्धो? यो कार्यरतः; को बधिरो?
यः श्रुणोति नहितानि;
को मूको? यः काले प्रियाणि
वक्तुं न जानाति । ॥ १ ॥

[कौन अंधा है? जो दुष्ट कार्य करने में इच्छा रखता है! कौन बहरा है? जो हित की बातें नहीं सुनता है! कौन गूँगा है? जो प्रियवचन बोल नहीं पाता।]

को धर्मो? भूतदया;
किं सौख्य? मरोगिता जगति;
कः स्नेहः? सद्भावः;
किं पांडित्यं? परिच्छेदः । ॥ २ ॥

[धर्म कौन-सा है? भूत दया ही। सुख कौन-सा है? निरोग रहना ही। स्नेह कौन-सा है? अच्छी बुद्धि ही! पांडित्य कौन-सा है? निर्णय करने की शक्ति।]

कृत शत मसत्सु नष्टं;
सुभाषित शतं च नष्ट मबुधेषु;
वचनशत मवचन करे;
बुद्धिशत मचेतने नष्टं । ॥ ३ ॥

[दुष्टों की सौ प्रकार से सहायता देना व्यर्थ है। मूर्खों को उपदेश देना बेकार है। जो अच्छी बातें नहीं सुनता, उसे सौ प्रकार से समझाना भी व्यर्थ है।]

विवेक

महान ज्ञानी

बहुत दिन पहले की बात है। एक गाँव में एक आदमी रहता था जो अपने को बड़ा ज्ञानी मानता था। लोग उसकी बात पर यक़ीन करते थे।

उस गाँव में एक किसान दंपति था। पर दोनों अव्वल दर्जे के सुस्त थे। सूर्योदय के एक-दो घड़ी के बाद ही नींद से जागते थे।

एक दिन एक आदमी ने उन्हें सलाह दी- "मुर्गा नामक एक पक्षी होता है, तुम लोग उस पक्षी को ख़रीद लाओ, वह तड़के ही बांग देकर तुम्हें जगा देगा जिससे तुम लोग अपने काम वक़्त पर कर सकते हो।"

पति-पत्नी निकट की एक हाट में गये और एक बतख को ख़रीद लाये। रात को उस दंपति ने बतख को चारपाई के नीचे रखा और यह सोच कर वे सो गये कि सवेरे वही उन्हें जगा देगा।

दूसरे दिन जब वे नींद से जाग उठे तो देखा, दुपहर हो गयी थी। अचरज में आकर चारपाई के नीचे झांका तो बतख था, पर उसने बांग नहीं दी थी। पक्षी ने बांग क्यों नहीं दी, यह जानने के लिए वे दोनों बतख को साथ ले महा ज्ञानी के पास पहुँचे और सारा समाचार उसे सुनाया।

महा ज्ञानी ने बतख को अपने हाथ में लिया, उसकी जांच करके बताया-"अरे, यह कैसे बांग देगा? किसी ने इसकी नाक पर पैर रख कर कुचल दिया है।"

वे पति-पत्नी उसकी अक्लमंदी पर चकित हो घर लौट आये। कुछ दिन बीत गये। उस दंपति के घर में एक बकरी थी। एक दिन वह रस्सा तोड़ कर सारे अहाते में अनाज देख घूमती रही, आखिर एक मिट्टी के बर्तन में बकरी ने सर ठूंस दिया। अनाज खाने के बाद बकरी ने अपना सर

हरजीत सिंह

बाहर निकालना चाहा, पर वह नहीं निकला। क्योंकि उसके सींग बर्तन में अटक गये थे। इसलिए बकरी अपने सर बर्तन उठाये इधर-उधर भागने लगी। बकरी के सर को बर्तन में से निकालाने के ख्याल से एक ने बकरी की पूंछ पकड़ी और दूसरे ने बर्तन को पकड़ पर खींचा, मगर बर्तन में सींग आड़े हो कर अटक गये थे।

तब कोई उपाय न देख उस दंपति ने महाज्ञानी को खबर भेजी। ज्ञानी ने आकर बकरी के हाल को देखा। बड़ी देर तक गंभीरता पूर्वक विचार करके बताया–"सुनो, बकरी और बर्तन को अलग करना चाहे तो बकरी का सर काटना होगा।"

"वाह, कैसी युक्ति है!" पति-पत्नी बोल उठे। तब एक तलवार लाकर उन दोनों ने एक ही वार में बकरी का सर काट दिया। फिर क्या था, बकरी और बर्तन अलग-अलग हो गये।

"महाशय! बर्तन में बकरी का सर रह गया है। क्या करे?" दोनों ने पूछा।

"अरे, यह कौन बड़ी बात है? बर्तन को फोड़ डालो तो बकरी का सर निकल आवेगा।" ज्ञानी ने समझाया।

'यह भी एक अद्भुत युक्ति है।' यह सोचते बर्तन को ऊपर उठा कर जमीन पर दे मारा। बर्तन के सौ टुकड़े हो गये और बकरी का सर निकल आया।

"आज आपने हमारा जो उपकार किया, इसे हम ज़िंदगी भर भूल नहीं सकते। आप कृपया हमारे घर दावत खाकर तब चले जाइये।" दंपति ने कहा।

ज्ञानी ने मान लिया। मगर भोजन करते समय कहा–"भविष्य में क्या होगा?"

"क्या हुआ है, जी! जल्दी बताइये!" दंपति ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"मैं यही सोच रहा हूँ कि मेरे मरने के बाद तुम जैसे भोले लोगों का क्या हाल होगा?" ज्ञानी ने बताया।

मगर वास्तव में वह ज्ञानी नाहक़ परेशान हो गया था। ऐसे ज्ञानी तो इस दुनिया मे सदा रहते आये हैं।

सोने के अण्डे

एक गाँव में घनश्याम नामक एक गरीब युवक था। उसके अपना कहने वाला कोई न था। उसके रहने के लिए एक छोटी-सी झोंपड़ी थी। एक मुर्गी को वह पालता, दिन-भर कड़ी मेहनत करता और उससे जो कुछ मिलता, रूखा-सूखा खाकर अपना पेट भर लेता, अगर किसी दिन मजदूरी नहीं मिलती तो मुर्गी के दिये अण्डे पका कर खा लेता। पानी पीकर सो जाता।

घनश्याम के पड़ोस में धनराज नामक एक अमीर था। धनराज लालची ही नहीं बल्कि दूसरों को खुश देख वह सहन नहीं कर पता था। घनश्याम के पास कौड़ी भी न थी, फिर भी उसके निश्चित रहते देख धनराज का दिल कसक उठता था। उसकी मुर्गी को देख ईर्ष्या होती थी।

एक दिन जब घनश्याम बाहर गया था, तब मौक़ा पाकर धनराज ने मुर्गी को मार कर खा डाला। घनश्याम ने घर लौट कर देखा तो उसकी मुर्गी गायब थी। मगर मुर्गी के पर धनराज के घर के आहाते में दिखाई दिये। इसलिए घनश्याम ने धनराज के घर जाकर पूछा—"तुमने मेरी मुर्गी को क्या किया? सच सच बता दो।"

"भाई साहब! मेरी बिल्ली कहीं से एक मुर्गी को पकड़ लायी। वह मुर्गी का गला काटने को थी, मैंने उसे बचाना चाहा, लेकिन क्या बताऊँ, वह मुर्गी मर ही गयी। लाचार होकर मैंने उसे पका कर खाया। मुझे क्या मालूम था कि वह मुर्गी तुम्हारी है।" धनराज ने जवाब दिया।

इस पर घनश्याम नाराज़ हो गया और बोला—"तुम मेरी मुर्गी लौटा दोगे या मैं राजा के पास जाकर शिकायत करूँ?"

धनराज डर गया; क्योंकि राजा सच्चा इन्साफ़-पसंद था। धनराज को ज़रूर

उषारानी भाटिया

जेल की सज़ा प्राप्त होगी या जुर्माना चुकाना पड़ेगा। इसलिए उसने सोचा कि किसी तरह से घनश्याम के साथ समझौता कर लेना उचित होगा। यह सोच कर वह अपने घर से एक बतख लाया और घनश्याम के हाथ में रखते हुए बोला– "भाई साहब! तुम अपनी मुर्गी के बदले में इसे लेते जाओ।"

बढ़िया मुर्गी के बदले छोटे बतख को पाकर वह निराश हुआ, फिर भी झगड़ा करना अच्छा न समझ कर चुपचाप बतख ले अपने घर चला गया। थोड़े दिन बाद बतख अण्डे देने लगा। बरसात का मौसम आया। एक दिन की रात को ज़ोर से पानी बरस रहा था तब एक फ़कीर ने आकर धनराज का दर्वाज़ा खटखटाया।

"कौन है? वक़्त बे वक़्त हमें तंग क्यों करते हो? इस वक़्त दर्वाज़ा खोलने कौन आयेगा? जाओ।" धनराज ने डांट बतायी।

फ़कीर ने पड़ोस में जाकर घनश्याम के दर्वाज़े पर दस्तख दिया। घनश्याम ने दर्वाज़ा खोल कर देखा। उसे स्नेह से भीतर बुलाया, सूखे कपड़े दिये, शरीर सेंकने के लिए आग जलायी। उस पर बतख के दो अण्डे पका कर फ़कीर को दिया।

"बेटा, बतख के ये अण्डे बड़े अच्छे हैं। देखूं तो सही, तुम्हारा बतख कैसा है?" फ़कीर ने घनश्याम से पूछा। घनश्याम ने झाबे के नीचे से बतख को निकाल कर फ़कीर के हाथ में दिया।

"बेटा! भगवान तुम्हारा भला करेगा।" इन शब्दों के साथ फ़कीर ने बतख पर हाथ फेरा, फिर उसे घनश्याम के हाथ लौटा दिया। तब तक वर्षा थम गयी, इसलिए फ़कीर उसी अंधेरे में कहीं चला गया।

उसके दूसरे दिन से बतख ने सोने के अण्डे देना शुरू किया। इससे घनश्याम की गरीबी जाती रही। उस दिन से घनश्याम ने मज़दूरी करना छोड़ दिया, साथ ही आराम से खा-पीकर जो कुछ बचता, उसे दान देने लगा। मगर वह उसी पुरानी झोंपड़ी में रहता था।

एक दिन धनराज ने खुद देखा कि घनश्याम बतखवाले झाबे के नीचे से एक सोने का अण्डा निकाल रहा है। फिर क्या था, धनराज ईर्ष्या से जल उठा। चूँकि वह बतख उसी का था, इसलिए उसकी ईर्ष्या दुगुनी हो गयी।

अगर धनराज घनश्याम से पूछता कि 'मेरे बतख को वापस लौटा दो।' तो वह नहीं देगा। इसलिए धनराज अपने दो नौकरों को साथ ले सीधे राजा के दरबार में पहुँचा और शिकायत की– "महाराज, मेरे पड़ोसी घनश्याम रोज़ मेरे बतखों को हड़पता है। मैंने सोचा कि एक एक करके सबको बिलाव खाता जा रहा है, मगर कल मेरे बतख को घनश्याम के चुराते मेरे इन दो नौकरों ने देखा है। इसलिए महाराज से मेरा निवेदन है कि मेरे बतख को वापस दिलाने की कृपा करे।"

राजा ने अपने भटों के भेजकर घनश्याम को बतख के साथ राज दरबार में बुलाया।

"क्या यह सच है कि तुमने कल रात को धनराज के बतख को चुराया है?" राजा ने घनश्याम से पूछा।

घनश्याम समझ गया कि धनराज को बतख के सोने के अण्डे देने का समाचार मालूम हो गया है, इसीलिए वह यह चाल चल रहा है। उसने कहा–"महाराज!

मैंने चोरी नहीं की। यह बतख धनराज का ही है। मगर कुछ दिन पहले इसने मेरी मुर्गी को मार कर खा डाला और बदले में मुझे यह बतख दिया है।"

"महाराज! यह झूठ बोलता है। कल इसके चोरी करते मेरे नौकरों ने अपनी आँखों से देखा है। मगर उसकी बात का गवाह कौन है?" धनराज ने कहा।

राजा ने यह कहकर उन दोनों को घर भेज दिया कि "फिलहाल इस बतख को मेरे पास ही रहने दो। कल फिर आ जाओ, तब मैं इन्साफ़ करूँगा।"

उस दिन भी बतख ने राजमहल में सोने का अण्डा दिया। राजा खुद अपनी

आँखों पर विश्वास नहीं कर पाया। राजा ने सोचा कि यह रहस्य दोनों को मालूम हुआ होगा, मगर उन्हीं के मुँह से सच्ची बात कहलवानी होगी।

दूसरे दिन धनराज और घनश्याम समय पर दरबार में आ पहुँचे।

राजा ने धनराज को एक साधारण अण्डा दिखाते हुये पूछा—"क्या तुम्हारा बतख इस अण्डे के बराबर के अण्डे देता है?"

"नहीं महाराज, इससे बड़े अण्डे देता है।" धनराज ने जवाब दिया। राजा ने यही सवाल घनश्याम से भी पूछा।

"महाराज, वह मामूली अण्डे नहीं देता, बल्कि मेरा बतख रोज़ एक सोने का अण्डा देता है।" घनश्याम ने कहा।

धनराज ने अपनी अक्लमंदी का परिचय देते हुए कहा—"यह कैसा सफ़ेद झूठ है, महाराज! बतख कहीं सोने के अण्डे देता है? असल में यह उसका बतख ही नहीं है।"

"तुम सच कहते हो। वह तुम्हारा ही बतख है। इसे तुम्हीं ले जाओ।" यह कहकर राजा ने एक साधारण बतख धनराज के हाथ देकर भेज दिया।

घनश्याम यह सोचकर चिंता में वहीं खड़ा रहा कि उसके साथ न्याय नहीं हुआ है, तब राजा ने उसे सांत्वना दी—"घनश्याम, तुम चिंता न करो। तुम्हारा बतख मेरे पास ही है। यह बतख सोने के अण्डे कैसे देता है? इसका रहस्य क्या है?"

घनश्याम ने फ़क़ीर का सारा समाचार राजा को कह सुनाया। राजा आश्चर्य में आ गया। उसने घनश्याम को बतख के साथ राज दरबार में रह जाने को कहा।

धनराज जो बतख ले गया था, वह मामूली अण्डे ही देने लगा। जब उसे मालूम हुआ कि घनश्याम को दरबार में नौकरी मिल गयी, तब उसने सोचा कि उसकी करनी का अच्छा फल मिल गया है।

शिलास्थ

[१७]

[राजा नित्यानंद जब अपनी राजधानी की ओर भाग खड़ा हुआ, तब विघ्नेश्वर पुजारी अपने योद्धाओं को साथ ले नगर पर हमला कर बैठा। जब वह दल नगर के द्वार को तोड़ने लगा तब खड्गवर्मा तथा जीवदत्त ने राजा नित्यानंद को सलाह दी। इस पर मंत्री ने नगर का द्वार खुलवा दिया, तब पुजारी उद्यान की ओर चल पड़ा। बाद-]

उद्यान की ओर जानेवाले मार्ग के दोनों तरफ़ ऊँचे वृक्ष थे। उसकी डालें एक दूसरे से मिली हुई थीं। पुजारी जब उस रास्ते से थोड़ी दूर आगे बढ़ा, तब पेड़ों पर से कोई चिल्ला पड़ा-"पुजारी पर गुलाब का जल छिड़का दो।"

इसके तुरंत बाद पेड़ों पर से पुजारी पर गुलाब का जल गिरने लगा। उसकी गंध से वाक़िफ़ होने पर पुजारी गुस्से में आया और चिल्ला पड़ा-"पेड़ों की डालों पर वह कौन बैठा है, जो इस तरह मेरा अपमान कर रहा है? उसका सर कटवा दूंगा।"

"लगता है, पुजारी का स्नान समाप्त हो गया है, जलनेवाले कपड़े के टुकड़े उस पर डाल दो।" दूसरा कंठ सुनाई दिया।

दूसरे ही क्षण पेड़ों की डालों में से जलनेवाले कपड़ों के टुकड़े विघ्नेश्वर

पुजारी के राक्षस हाथी पर गिरने लगे। पहले ही हाथी पर के कपड़े तेल में भीग गये थे, इसलिए हाथी पर जहाँ-तहाँ लपटें भभक उठीं। पुजारी के सर पर भी लपटें उठने लगीं।

"यह तो धोखा है! होनेवाले राजा के साथ दगा है!" ये शब्द कहते पुजारी ने हाथी पर खड़े हो जलनेवाले अपने किरीट को दूर फेंक दिया। उसी समय हाथी के शरीर के भीतर से कई कंठ सुनाई दिये। ऐसा लगा कि उसके चारों पैर चार दिशाओं में दौड़ने के प्रयत्न में हैं। ऊपर से हाथी पर जलनेवाले तेल के कपड़े गिरते जा रहे थे।

"खड्गवर्मा, जैसा हमने सोचा, यह हाथी सच्चा नहीं है! किसी कमबख्त अक़्लमंद ने हाथी की विशाल आकृति बनायी और उसमें मनुष्यों को रखकर चलाता रहा। इस तरह पुजारी ने राजा नित्यानंद को डरा दिया है।" जीवदत्त ने कहा।

"देखो, एक एक करके जंगली युवक हाथी के पेट और पैरों में से बाहर आ रहे हैं। हाथी एक ओर झुककर गिरता जा रहा है! लपटों में फँसकर मरने के पहले ही पुजारी को बाहर खींच लाना होगा।" इन शब्दों के साथ खड्गवर्मा ने एक फँदा फेंका और उसे पुजारी की कमर में फँसाकर ऊपर खींचा। पुजारी हवा में हाथ-पैर मारते चिल्लाने लगा–"बाप रे, मर गया। बचाइये, मेरा शरीर जलता जा रहा है।"

इस बीच हाथी जलकर नीचे गिर पड़ा। उसके शरीर में से कई जंगली युवक चिल्लाते बाहर आ पहुँचे। उस समय राजा नित्यानंद का सेनापति आया। उसने अपने सैनिकों के द्वारा सभी जंगली युवकों को एक जगह इकट्ठा कराया। खड्गवर्मा ने पुजारी को पेड़ पर से नीचे उतारा। पुजारी अपने कपड़ों में लगी आग बुझाने के लिए जमीन पर लोटने लगा।

खड्गवर्मा और जीवदत्त पेड़ पर से उतर आये और पुजारी पर मिट्टी फेंककर उसकी आग बुझायी। तब उसकी गर्दन पकड़कर उसे खड़ा कर दिया। खड्गवर्मा ने क्रोध से दांत पीसते हुए तलवार की नोक पुजारी के कंठ पर टिका दी और कहा–"दुष्ट! तुमने धोखे से हमें बन्दी बनाया और अनेक कष्ट दिये। इसलिए मैं अभी तुम्हारा सर काटने जा रहा हूँ।"

विघ्नेश्वर पुजारी कांपते स्वर में बोला– "महाशय, मेरा वध न कीजिये। मेरे आराध्य देव ने सपनें में दर्शन देकर मेरे दिल में राज्य की चाह पैदा कर दी है। मगर उस जादूवाले हाथी की कल्पना मैंने नहीं की। यह कल्पना स्वर्णाचारी ने की है।"

जीवदत्त ने खड्गवर्मा को रोककर पुजारी से पूछा–"वह स्वर्णाचारी कहाँ?"

पुजारी पीड़ा से कराहते हुए बोला– "वह तो हाथी के कुंभस्थल में छिपा बैठा है। वहाँ रहकर वह हाथी के भीतर बिठाये गये यंत्रों को जंगली युवकों से घुमाता रहता है। क्या वह अभी तक बाहर नहीं आया?"

पुजारी की ये बातें सुनते ही जीवदत्त जल्दी जल्दी जलनेवाले हाथी के पास दौड़ पड़ा और सैनिकों से हाथी के सर पर जल डलवाया। आग के बुझने पर हाथी की सूंड़ ऊपर उठवा दी। तुरंत भीतर से एक आदमी पत्थर की भांति धम्म से नीचे गिर पड़ा। वह बेहोश था।

"यही स्वर्णाचारी है! इसी की वजह से मेरी जान आफ़त में फंस गयी।" पुजारी ने कहा।

"तुम्हारी लालच ने ही तुमको तक़लीफ़ों में डाल दिया। दूसरों की तुम निंदा क्यों करते हो?" जीवदत्त ने पुजारी को डांट बतायी, तब सैनिकों द्वारा स्वर्णाचारी के मुंह पर पानी छिड़कवा दिया।
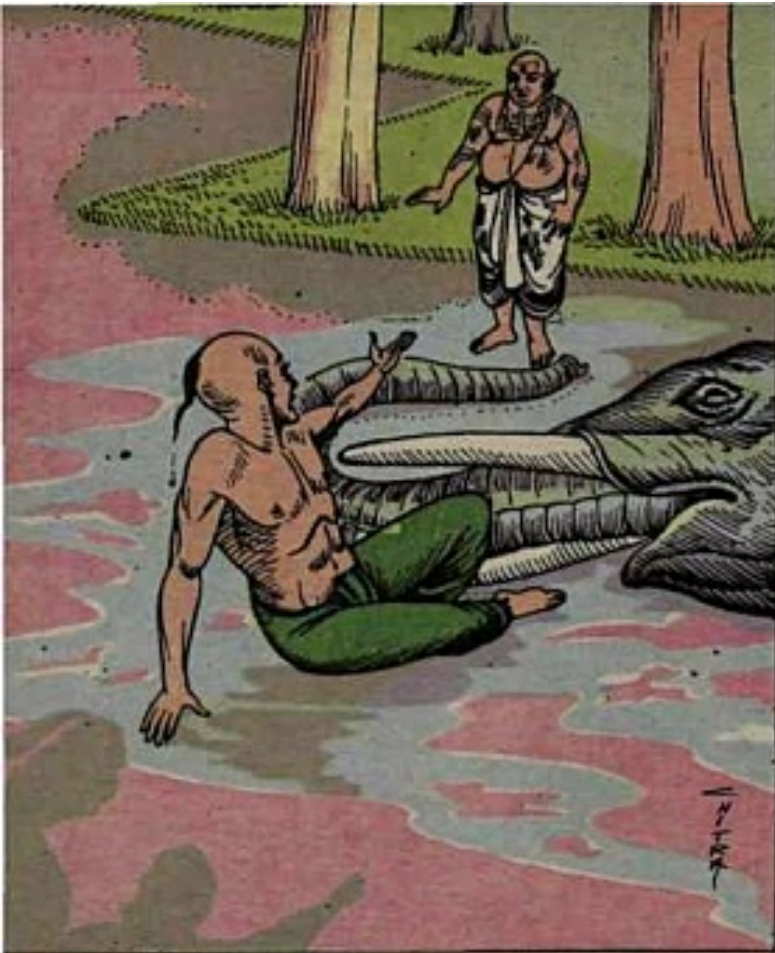
थोड़ी ही देर में स्वर्णाचारी ने आँखें खोलीं, चारों ओर देखते हुए बोला–"मैं कहाँ हूँ? क्या पुजारी राजा बन गया?"

"न तो वह राजा बना और न तुम मंत्री बने! तुम दोनों के शरीर जल गये हैं। थोड़ी ही देर में राजा नित्यानंद आकर तुम दोनों का वध करायेंगे।" खड्गवर्मा ने क्रोध भरे स्वर में कहा।

खड्गवर्मा की बातें सुनते ही स्वर्णाचारी उठ बैठा। दूर पर खड़े पुजारी की ओर देख रोनी सूरत बनाये बोला–"मैंने तुम्हें लाख समझाया कि ऐरावत को नगर के भीतर मत ले जाओ, हमारा रहस्य खुल जायगा, मगर तुमने मेरी बात नहीं सुनी। अब हम दोनों की मौत निश्चित है।"

"साधारण मौत नहीं, तुम दोनों के हाथ-पैर कटवाकर बुरी तरह से मार डालूंगा! समझें।" ये शब्द कहते राजा नित्यानंद एक झुरमुट के पीछे से बाहर आया। इसके बाद खड्गवर्मा तथा जीवदत्त को संबोधित कर बोला–"महावीरो, तुम दोनों ने अपनी शक्ति और सामर्थ्य के बल पर मुझे और मेरे राज्य की इन दुष्टों से रक्षा की। माँगो, तुम दोनों क्या चाहते हो?"

"हम दोनों आप से किसी भी प्रकार के पुरस्कार की आशा नहीं करते। आप बड़ी मुसीबत से बच गये। इसलिए सुखपूर्वक अपने राज्य पर शासन कीजिये। हम इस पुजारी और स्वर्णाचारी के साथ जंगली युवकों को भी साथ ले अपने रास्ते चले जायेंगे।" जीवदत्त ने कहा।

"इन सबको क्या मैं प्राणों के साथ छोड़ दूं? मैंने निश्चय कर लिया है कि इन जंगली युवकों पर तेल डलवा कर जान से जला दूं! तुम दोनों ने इस राक्षस हाथी पर जिस अस्त्र का प्रयोग किया, मैं भी इन पर उसी अस्त्र का प्रयोग करने जा रहा हूँ।" राजा नित्यानंद ने उत्तर दिया।

के घर जाकर पूछो, शायद दोनों में किसी के साथ अपनी पुत्री को व्याहने के लिए तैयार हो जाय।" देवगुप्त ने समझाया।

दोनों भाइयों ने विष्णुगुप्त के घर जाकर कुशल-प्रश्न पूछे और अपने विचार बताये। पर उन दोनों में से किसी को भी अपने दामाद बनाना विष्णुगुप्त को पसंद न था। मगर यह बात स्पष्ट रूप से कहने में विष्णुगुप्त संकोच करने लगा। क्योंकि उन युवकों के पिता देवगुप्त आदर करने योग्य व्यक्ति थे। उनका वंश भी अत्यंत प्रतिष्ठित था। अलावा इसके दानगुप्त और धनगुप्त सुंदर युवक थे, बुद्धिमान भी थे, पर उनमें कमी यह थी कि वे धनी न थे।

इसलिए विष्णुगुप्त ने उनसे कहा–"बेटे, मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अपनी पुत्रियों का विवाह धनी युवक के साथ ही करूँगा। इसलिए कई निर्धन युवकों को मैंने निराश करके वापस लौटाया। यदि मैं इस वक़्त अपनी पुत्री का विवाह तुम में से किसी एक के साथ करूँ तो मेरा वचन-भंग होगा। अलावा इसके मेरे बाद यह व्यापार मेरे दामाद को ही संभालना होगा। इसलिए अपने होनेवाले दामाद की व्यापारिक कुशलता भी देखना चाहूँगा।" इस तरह विष्णुगुप्त ने घुमा-फिराकर जवाब दिया।

इस उत्तर से वे युवक निराश नहीं हुए। उन्होंने कहा–"व्यापार करने पर ही

व्यापारिक कुशलता का परिचय प्राप्त होगा। आप पहले ही यह कैसे कह सकते हैं कि हममें व्यापारिक कुशलता नहीं है?"

विष्णुगुप्त की समझ में न आया कि उनसे कैसे पिंड छुडावे। इसलिए उसने सोचकर कहा—"मैं तुम दोनों को एक एक हज़ार रुपये देता हूँ। इस पूंजी को लेकर तुम लोग व्यापार करो और ठीक एक साल में इसे सौ गुने बढ़ाकर जो एक लाख रुपयों के साथ पहले लौट आयगा, उसके साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह करूँगा।"

विष्णुगुप्त के मन में ज़रा भी यह विश्वास न था कि ये युवक एक साल के भीतर उस पूंजी को सौ गुना बढ़ायेंगे। उसने यह सोचकर यह शर्त रखी थी कि इनसे पिंड छुड़ाने और अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए दो हज़ार रुपये खर्च कर देना पर्याप्त होगा।

मगर दानगुप्त और धनगुप्त यह सोचकर प्रसन्न हुए कि कम से कम कमलाक्षी के साथ विवाह करने के लिए एक मार्ग तो मिल गया है। वे अपने पिता की अनुमति लेकर व्यापार करने के लिए दोनों दो देशों में चले गये। पहले ही उन्होंने यह निर्णय कर लिया कि एक साल पूरा होने के पहले वे कहाँ पर फिर मिलेंगे।

एक साल पूरा होने को था। दोनों निर्णीत प्रदेश में मिले, पर किसी के चेहरे पर खुशी के चिह्न नज़र न आ रहे थे।

"तुमने कितने रुपये कमाये?" दानगुप्त ने धनगुप्त से पूछा।

"मैंने तीस हज़ार कमाये हैं। क्या तुमने एक लाख पूरा किया?" धनगुप्त ने पूछा।

"नहीं, बड़ी मुश्किल से मैं अस्सी हज़ार रुपये कमा सका।" दानगुप्त ने कहा।

"विष्णुगुप्त की परीक्षा में हम दोनों हार गये। हमारी सारी मेहनत बेकार गयी।" धनगुप्त ने गहरी साँस ली।

"बेकार नहीं गयी, भाई! तुम मेरे कहे मुताबिक़ करो। तुम्हारे पास तीस हज़ार

"महाराज, चाहे शत्रु जितना भी भयंकर क्यों न हो, ऐसी क्रूरता के साथ वध करना न्यायसंगत न होगा। जो हुआ, सो हो गया। मैं इस पुजारी को तथा इसके दल को भी आपके राज्य की सीमा पार करवा कर ऐसा प्रबंध करूँगा जिससे भविष्य में इनके द्वारा आपको किसी प्रकार की तक़लीफ़ न हो।" जीवदत्त ने कहा। इसके बाद विघ्नेश्वर पुजारी की ओर मुड़कर कहा—"पुजारी तुम काँपते क्यों हो? तुम्हारे प्राणों के लिए कोई खतरा न होगा! हमारे साथ चलो! तुम्हारे अनुचर जंगली युवकों की रक्षा करनी है।" इन शब्दों के साथ जीवदत्त चल पड़ा।

"हे महावीर! हमारा आदेश क्या होगा?" राजा नित्यानंद कुछ कहने जा रहा था, तभी खड्गवर्मा ने म्यान से तलवार खींचकर कहा—"यहाँ पर आदेश देनेवाले जीवदत्त हैं, तुम नहीं? समझे!"

राजा नित्यानंद क्रोध से आपाद मस्तक काँप उठा और उच्च स्वर में बोला—"मेरे राज्य में...मेरे महल के भीतर...मेरे सामने..." और कुछ कहने को हुआ तभी मंत्री ने उसके निकट जाकर समझाया। राजा नित्यानंद शांत हो गया और वहाँ से जानेवाले खड्गवर्मा, जीवदत्त तथा

अपने दो शत्रुओं की ओर दाँत मींचते देखता रह गया।

खड्गवर्मा और जीवदत्त जब उस प्रदेश में पहुँचे जहाँ जंगली युवक बन्दी बनाये गये थे, देखा, कुछ सैनिक दीवारों पर खड़े हो जंगली युवकों पर तेल डाल रहे हैं। इस दृश्य को देख खड्गवर्मा और जीवदत्त चिल्ला उठे—"ठहर जाओ! ठहरो।"

सैनिकों ने जवाब दिया—"हमारे सेनापति का आदेश है कि इन जंगली युवकों को प्राणों के साथ जला दे।"

खड्गवर्मा और जीवदत्त झट दीवारों पर चढ़ बैठे। सैनिक कोलाहल करते जंगली युवकों पर तेल डाल रहे थे।

जंगली युवक घबरा कर हाहाकार करते बन्द दर्वाजों को तोड़ने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे थे।

"तुम लोगों ने हमारा आदेश नहीं सुना, शायद!" इन शब्दों के साथ खड्गवर्मा और जीवदत्त सैनिकों पर टूट पड़े और उन्हें लात मार-मारकर जंगली युवकों के बीच गिराने लगे। अब जंगली युवकों की जान में जान आ गयी।

"महाशय! हमें इन सैनिकों से बचाकर दर्वाजे खुलवा दीजिये। हम अपने रास्ते जंगलों में भाग जायेंगे। प्राणों के रहते हम कभी इस ओर झांककर भी न देखेंगे!" इन शब्दों के साथ जंगली युवकों ने दोनों हाथ उठाकर खड्गवर्मा तथा जीवदत्त को प्रणाम किया।

थोड़ी ही देर में जो सैनिक जंगली युवकों के बीच गिर गये थे, उन्हें छोड़ बाक़ी सैनिक भाग खड़े हुए। खड्गवर्मा और जीवदत्त दीवार से उतरकर प्रधान फाटक के पास आ पहुँचे। द्वार पर पहरा देनेवाले दो सैनिक उन्हें देख बोल उठे– "हमारे सेनापति का आदेश है कि..." कुछ और कहने जा रहे थे, तभी जीवदत्त ने अपने दण्ड से उन दोनों सैनिकों को दे मारा। पहरेदार घबराकर हट गये। तब खड्गवर्मा ने दर्वाजे पर बंधे रस्सों को अपनी तलवार से काट डाला और दर्वाजों को खोल दिया। सभी जंगली युवक बेतहाशा बाहर निकल आये। उनमें से कुछ लोग खड्गवर्मा और जीवदत्त के चरणों पर गिरकर साष्टांग दण्डवत करने लगे।

"तुम लोगों की जान के लिए कोई ख़तरा नहीं है। मजे से तुम लोग जंगलों में जा सकते हो! मगर ख्याल रखो कि तुम लोग आइंदा विघ्नेश्वर पुजारी जैसे दुष्टों के जाल में न फँसो।" जीवदत्त ने उन्हें समझाया।

"महाशय, वह दुष्ट पुजारी और स्वर्णाचारी कहाँ? उन लोगों ने हमें फुसला कर हमारे साथ दगा दिया। हम

अबू कीर ने और रंगों के नाम बताये, लेकिन दूकानदार ने साफ़ बताया कि वह सिवाय नीला रंग के दूसरे रंगों के नाम को जानता तक नहीं।

"अच्छा, तब तो यह बताओ कि इस शहर में मेरे बताये रंग रंगनेवाला कोई है?" अबू कीर ने पूछा।

"इस शहर में रंगरेज़ी का काम करनेवाले हम चालीस लोग हैं। हम लोगों ने अपनी एक समिति बना ली है। हमें छोड़ कोई अन्य व्यक्ति रंगरेज़ी का काम नहीं कर सकता। यह विद्या हमें परंपरागत प्राप्त होती आ रही है। हम यह विद्या नये लोगों को नहीं सिखाते। हम सब नीला रंग ही कपड़ों पर चढ़ाते हैं। हमारे देश में और रंगों के कपड़ों की बिक्री नहीं होती।" दूकानदार ने कहा।

इस पर अबू कीर ने दूकानदार से बताया–"साहब! मैं भी रंगरेज़ हूँ। मुझे तुम अपनी दूकान में काम पर रख लो। जो रंग चाहे उसे कपड़ों पर चढ़ाने की कला मैं तुम्हें सिखाता हूँ। तुम और रंगरेज़ों से आगे बढ़ जाओगे। खूब धन कमा सकोगे।"

"हम नये लोगों को काम पर नहीं रखते।" दूकानदार ने बताया।

"अगर मैं खुद रंगरेज़ की दूकान खोल दूँ तो क्या होगा?" अबू कीर ने पूछा।

"यह तो नामुमक़िन है। तुमसे नहीं होगा। अगर तुम नयी दूकान खोलोगे तो आफ़त में फँस जाओगे।" दूकानदार ने कहा।

अबू कीर वहाँ से चला गया। वह और कई दूकानों में गया, मगर किसी ने उसे काम पर न रखा। आख़िर वह रंगरेज़ों की समिति के प्रधान के पास गया।

"मैं क्या कर सकता हूँ? नये लोगों को हमारे पेशे में लेना हमारे नियमों के विरुद्ध है।" प्रधान ने साफ़ बताया।

अबू कीर का क्रोध उमड़ पड़ा। वह सीधे उस देश के राजा के पास जाकर बोला–"महाराज, मैं परदेशी हूँ। मेरा पेशा रंगरेजी है। मैं चालीस प्रकार के रंग रंग सकता हूँ। फिर भी आपके शहर के रंगरेज मुझे काम नहीं दे रहे हैं और न मुझे रंगने देते हैं। वे नीले रंग को छोड़ दूसरे रंग का नाम तक नहीं जानते। मैं लाल, पीले, हरे, इत्यादि रंग रंग सकता हूँ।"

अबू कीर के मुँह से अनेक रंगों के नाम सुनकर राजा आश्चर्य चकित हो गया और बोला–"तुम सफ़ेद कपड़ों पर इतने प्रकार के रंग रंग सकते हो, तुम्हें मैं मुँह माँगा धन दूँगा। एक रंगरेज़ी दूकान ही खुलवा दूँगा। तुम इस शहर के रंगरेज़ों के पछड़े में न पड़ो। उनमें से किसी ने अगर तुमको छेड़ दिया तो मैं उसे उसकी दूकान के सामने फाँसी पर चढ़वा दूँगा।"

इसके बाद राजा ने अपने दरबारी वास्तुशास्त्री को बुलाकर आदेश दिया–"तुम लोग इस आदमी के साथ जाओ, जिस प्रदेश को यह चुनेगा, उस प्रदेश में चाहे महल हो या बगीचा, उसे मटियामेट कर वहाँ पर एक रंगरेज़ी कारखाना बना दो। उसमें चालीस बड़े बड़े हौज़ और चालीस छोटे हौज़ बना दो। यह जो भी कहे, उसे करो, समझे!"

फिर राजा ने शाल ओढ़ाकर अबू कीर का सम्मान किया, एक हज़ार दीनार तथा दो युवकों को सौंपकर कहा–"तुम्हारी दूकान के तैयार होने तक खर्च के लिए यह रक़म रख लो। ये युवक तुम्हारे नौकर हैं, इनसे काम करवा लो।" इनके अलावा राजा ने अबू कीर के रहने के लिए एक अच्छा महल और अनेक गुलामों को भी दिया। उसके घूमने के लिए एक बढ़िया घोड़ा भी दिया।

दूसरे दिन अबू कीर खूब चमकनेवाली पोशाकें पहनकर एक बड़े अमीर की भांति घोड़े पर सवार हो शहर में घूमने निकला।

CHITRA

उन्हें पकड़ ले जाकर हमारी काली माता के लिए बलि चढ़ायेंगे।" एक जंगली युवक ने कहा।

खड्गवर्मा और जीवदत्त ने चारों तरफ़ नजर दौड़ा कर देखा। पुजारी और स्वर्णाचारी दूर पर एक पेड़ के नीचे खड़े हो बात कर रहे थे। उनसे हटकर थोड़ी दूर पर राजा नित्यानंद, मंत्री और सेनापति एक दूसरे पेड़ के नीचे खड़े हो सलाह-मशविरा कर रहे थे, उनके पीछे सैनिक कतार बाँध कर खड़े हुए थे।

"खड्गवर्मा, राजा नित्यानंद को देखने पर मुझे लगता है कि वह जंगली युवकों, पुजारी और स्वर्णाचारी का यहीं पर वध कराने की कोई योजना बना रहा है!" जीवदत्त ने कहा।

"उन दुष्टों की बात छोड़ भी दे, पर जंगलियों को सुरक्षित उनके प्रदेश में पहुँचा देने की जिम्मेदारी हम पर है। बेचारे इन जंगलियों का पुजारी और स्वर्णाचारी ने अपने स्वार्थ के लिए खिलौनों जैसा उपयोग किया है।" खड्गवर्मा न कहा।

जीवदत्त इसका उत्तर देने ही वाला था तभी राजा नित्यानंद जल्दी जल्दी सैनिकों के पास गया। सेनापति राजा के पीछे जाकर हाथ मलते खड़ा रह गया। मंत्री उसी जगह खड़े हो बार-बार सैनिकों तथा खड्गवर्मा और जीवदत्त की ओर ताक रहा था।

"खड्गवर्मा, फिर से खतरा पैदा होने वाला है। राजा नित्यानंद अपने सैनिकों को जंगली युवकों पर उकसा रहा है। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है।" ये शब्द कहकर जीवदत्त ने जंगली युवकों से कहा– "तुम सब अपने अपने हथियार लेकर तैयार हो जाओ, मगर यह बताओ, तुम्हारा नेता कौन है?"

जंगली युवकों में से एक मजबूत शरीर वाला युवक आगे आया और खड्गवर्मा तथा जीवदत्त के सामने सर झुका कर प्रणाम करके बोला–"महाशय, मैं ही इनका नेता हूँ।" (और है)

आपसी मदद

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने यों कहा–"राजन, असंभव कार्यों को साधना हो, तो समर्थ व्यक्ति के लिए भी दूसरों की सहायता चाहिए। रामचन्द्रजी अवतारपुरुष थे, फिर भी वानरसेना की मदद से ही वे रावण का संहार करके सीता को वापस ला सके। तुम केवल अपनी शक्ति पर आधारित हो, इसलिए अपने कार्य को साध नहीं पा रहे हो! आपसी मदद के कारण ही देवगुप्त के पुत्र असंभव कार्य को साध पाये। मैं उनकी कहानी सुनाता हूँ, श्रम को भुलाने के लिए सुनो।"

बेताल यों कहने लगा: बहुत समय पूर्व कृष्णा नदी के तट पर धान्यकटक में

वेताल कथाएँ

विष्णुगुप्त नामक एक करोड़पति रहा करता था। उसके कमलाक्षी नामक इकलौती बेटी थी। उसके युक्त वयस्का होने पर कई युवक उसके साथ शादी करने आगे आये। उनमें से कुछ युवक करोड़पति जरूर थे, मगर वे दूर प्रदेशों के थे। विष्णुगुप्त अपनी इकलौती बेटी को दूर के प्रदेशों के युवकों के साथ ब्याहना नहीं चाहता था, इसलिए उन संबंधों को तोड़ दिया।

धान्यकटक के ही कुछ वैश्य युवक कमलाक्षी के साथ विवाह करना चाहते थे, मगर उनमें से एक भी युवक विष्णुगुप्त को पसंद न आया। उनमें से कुछ लोग निर्धन थे, कुछ सुंदर न थे तो कुछ युवकों के परिवार प्रतिष्ठित न थे।

धान्यकटक में ही देवगुप्त नामक एक वैश्यप्रमुख था। उसका परिवार विष्णुगुप्त के परिवार से भी अधिक प्रतिष्ठित था। एक जमाने में देवगुप्त के पिता व दादा करोड़पति थे, लेकिन देवगुप्त के पिता ने बौद्धधर्म स्वीकार करके अपनी सारी संपत्ति बौद्धधर्म के प्रचार तथा भिक्षुओं के पीछे खर्च कर डाली और वह निर्धन बन गया।

इसके बाद देवगुप्त छोटे-मोटे व्यापार करके अपने परिवार को चलाने लगा। उसके दो पुत्र थे। उनमें बड़े का नाम दानगुप्त था और छोटे का नाम धनगुप्त। मगर उन दोनों में सिर्फ़ एक साल का अंतर था। दोनों सुंदर थे, सदा साथ-साथ रहा करते थे।

उन दोनों युवकों के मन में एक ही विचार पैदा हुआ। वह यह कि कमलाक्षी के साथ विवाह करके विष्णुगुप्त की देखरेख में करोड़पति बन जाये। उन्होंने अपना यह विचार अपने पिता से बताया।

"तुम लोगों का विचार असंभव-सा लगता है। विष्णुगुप्त ने हम से भी कई गुने धनी युवकों के संबन्धों को इनकार किया है। फिर भी प्रयत्न करने में भी कोई नुक़सान नहीं है। तुम दोनों विष्णुगुप्त

रुपये हैं। मैं तुम्हें सत्तर हज़ार रुपये देता हूँ, ये लाख रुपये ले जाकर विष्णुगुप्त के मुंह पर फेंक दो और तुम कमलाक्षी के साथ शादी करो।" दानगुप्त ने समझाया।

"तुम क्या करोगे?" धनगुप्त ने पूछा।

"मैं घर नहीं लौटूंगा। मैं फिर उसी देश में जाऊँगा, जिस देश में मैंने साल भर व्यापार किया।" इन शब्दों के साथ दानगुप्त ने अपने छोटे भाई को सत्तर हज़ार देकर घर भेज दिया और वह अपने रास्ते चला गया।

धनगुप्त ने एक लाख रुपये विष्णुगुप्त को सौंपा, और उसकी कन्या के साथ विवाह करके सुखपूर्वक ज़िंदगी बिताने लगा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा—"राजन, दानगुप्त ने ज्यादा रुपये कमाया, फिर भी उसने कमलाक्षी के साथ विवाह किये बिना अपने छोटे भाई की मदद क्यों की? क्या भाई पर प्रेम के कारण ऐसा किया? उसके इस त्याग के पीछे क्या कारण है? इन प्रश्नों का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सर टुकड़े टुकड़े हो जायगा।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा—"देवगुप्त के दोनों पुत्रों ने कमलाक्षी के साथ इसलिए विवाह करना चाहा कि उस कन्या के पिता की मदद से करोड़पति बन जाये। मगर विष्णुगुप्त ने उन युवकों की कमाई की शक्ति की परीक्षा ली। उसमें बड़ा भाई ही सफल निकला। इससे यह स्पष्ट हुआ कि बड़े की अपेक्षा छोटे को ही कमलाक्षी के साथ विवाह करने की ज्यादा जरूरत है। यह भी साबित हुआ कि बड़ा भाई अपनी शक्ति के बल पर शीघ्र करोड़पति बन सकता है। उसने एक साल की अवधि में अपनी पूँजी को अस्सी गुने बढ़ा दिया। इसलिए वह चन्द वर्षों में करोड़पति बन सकता है। इसलिए उसने अपनी कमाई छोटे भाई को दे दी!"

राजा के इस तरह मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

सन्यासी कौन?

एक राजा था जो सन्यासियों के प्रति ज्यादा श्रद्धा रखता था। उसका विश्वास था कि सन्यासी संसार को त्याग कर मुक्तिमार्ग में चलते हैं, इसलिए वे सब से बड़े हैं। ऐसे सन्यासियों का भीख माँगना राजा को कतई पसंद न था। इसलिए उसने बहुत सोच-विचार के बाद मंत्री को बुलाकर कहा–"हमारे राज्य के प्रत्येक सन्यासी को दस हज़ार मुद्राएँ दे दो।"

देश में सन्यासियों की कमी न थी। प्रत्येक सन्यासी को दस हज़ार मुद्राएँ देने से राज्य का खजाना ही खाली हो जायगा। फिर भी मंत्री ने विरोध न किया और राज की बात मान ली।

दूसरे दिन दरबार में राजा ने मंत्री से पूछा–"हमने कल तुम्हें जो आदेश दिया, उसे अमल किया?"

"महाराज, आप मुझे क्षमा करें। क्यों कि मुझे कोई सन्यासी ही दिखाई नहीं दिया।" मंत्री ने उत्तर दिया।

राजा चकित रह गया। वह आश्चर्य के साथ मंत्री की ओर देखता रहा।

"जी हाँ, महाराज! सच्चा सन्यासी कभी तुच्छ धन को स्वीकार नहीं करता। धन स्वीकार करनेवाला व्यक्ति कभी सच्चा सन्यासी नहीं हो सकता।" मंत्री ने समझाया।
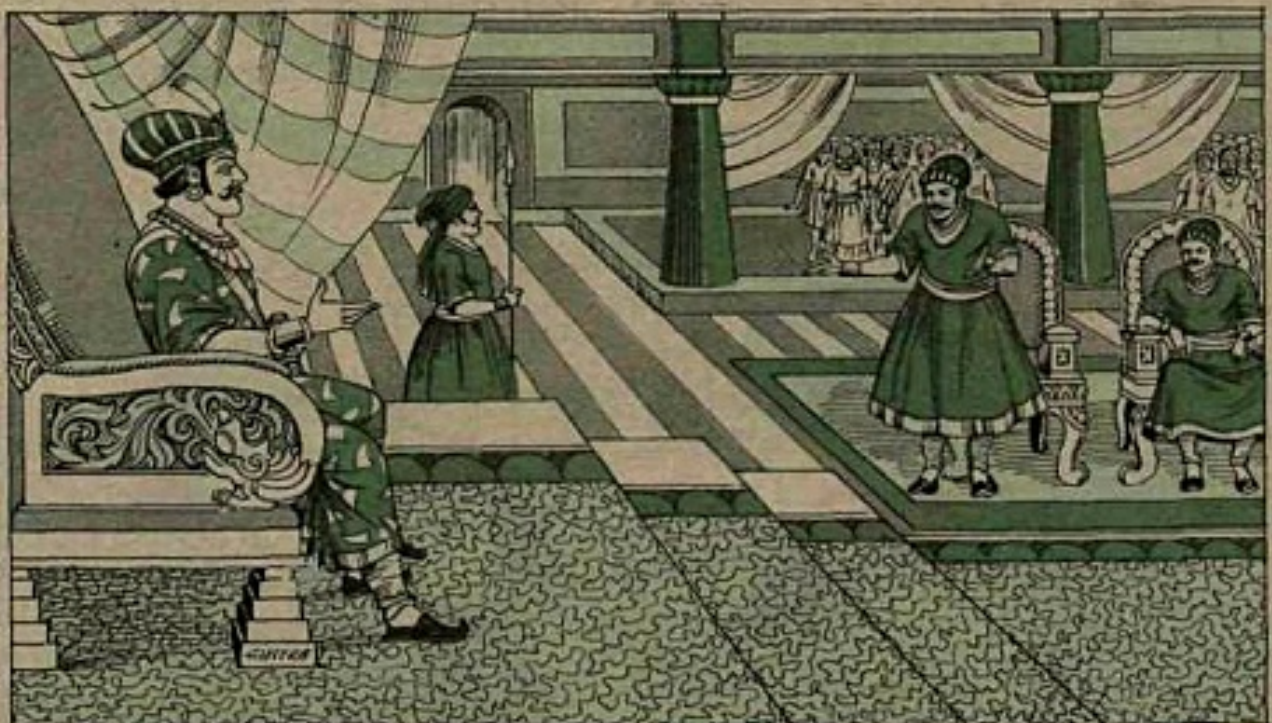
[२]

चालीस दिन इस प्रकार बीत गये। अबू कीर बराबर यही बताता रहा कि उसका पित्त विकार दूर नहीं हुआ। अबू सीर मेहनत करके उसे खिलाता रहा। अबू कीर दोनों जून भर पेट खाता और पड़ा रहता। जब भी अबू सीर यह कहता– "वाह, यह शहर कैसा सुंदर है! इसे न देखोगे तो तुम्हारी ज़िंदगी किस काम की?" मगर अबू कीर अपने पित्त विकार की बात बताकर लेटा रहता।

इन चालीस दिनों में कभी अबू सीर ने अपने दोस्त को डांटने की हिम्मत न की।

एक बार नाई अबू सीर बीमार पड़ गया और वह अपने कमरे से बाहर न जा सका। फिर भी उसने सराय के दरबान से मिन्नत की कि वह अबू कीर के लिए आवश्यक खाना लाकर दिया करे।

थोड़े दिन बाद अबू सीर की बीमारी बढ़ गयी। वह लाश की तरह बेहोश पड़ा रहा। अबू कीर अपनी भूख से परेशान हो बिस्तर से उठ बैठा। उसने खाने की चीज़ों के लिए सारा कमरा ढूंढ़ा। मगर उसे कुछ भी हाथ न लगा। उसने आखिर अबू सीर के कपड़ों की खोज की तो उसमें दिरामों की थैली मिली। अबू सीर ने मेहनत करके वह रक़म कमा रखी थी। उस थैली को अबू कीर ने अपनी कमर में खोंस लिया। उसने यह नहीं सोचा कि यह रक़म ले जाने से अबू सीर की क्या हालत होगी। उसने बड़ी सावधानी से कमरे का दर्वाज़ा बंद किया, बाहर से कुंड़ी चढ़ाकर कहीं चला गया। उसके बाहर जाते सराय के दरबान ने नहीं देखा था।

अबू कीर सीधे रोटी बेचनेवाली एक दूकान में गया, भर पेट खाना खाया। इसके बाद कपड़े की दूकान में जाकर अच्छे कपड़े खरीद लिये, उन्हें पहनकर नगर के सुंदर प्रदेशों को देखते इतमीनान से घूमने लगा। उस शहर की यह खासियत थी कि लोग या तो सफ़ेद वस्त्र पहने हुए थे या नीले रंग के वस्त्र। दूसरे रंगों के वस्त्र कहीं दिखाई न देते थे। दूकानों में भी सफ़ेद और नीले रंग के ही कपड़े बेचे जाते थे। रास्ते चलते अबू कीर ने एक रंगरेजी दूकान में झांककर देखा। उस दूकान में सभी हौदों में नीला रंग ही भरा हुआ था।

अबू कीर ने एक दूकान में प्रवेश करके दूकानदार को अपने सफ़ेद जेब रूमाल दिखाते हुए पूछा—"साहब! इसे रंगने के लिए कितनी रक़म लोगे? कौन-सा रंग रंगोगे?"

"नीला रंग चढ़ायेंगे! और रंग ही कहाँ है हमारे पास? उसका दाम बीस दिराम होगा।" दूकानदार ने जवाब दिया।

"क्या कहा? इस छोटे से कपड़े को रंगने के लिए बीस दिराम लोगे? हमारे देश में हो तो इसका दाम आधा दिराम भी न होगा!" अबू कीर ने आश्चर्य भरे स्वर में कहा।

"ऐसी बात हो तो तुम अपने देश में ही क्यों नहीं रंगवाते? इस देश में बीस दिराम से कम कोई न लेगा।" दूकानदार ने कहा।

"अच्छी बात है। बीस दिराम ही देता हूँ, इस पर लाल रंग चढ़वा दो।" अबू कीर ने पूछा।

"लाल रंग किस चिड़िया का नाम है? ऐसा रंग भी क्या कहीं होता है?" दूकानदार ने पूछा।

"तब तो हरा रंग चढ़ा दो!" अबू कीर ने फिर पूछा।

"हरा रंग भी कहाँ पर है? मैंने तो उसका नाम तक नहीं सुना है।" दूकानदार ने आश्चर्य के साथ पूछा।

उसके नौकर और वास्तुशास्त्री उसके आगे आगे चल रहे थे। अबू कीर ने सारी गलियों में घूमकर आखिर व्यापारियों की बस्ती के बीच में स्थित एक बड़ी दूकान को चुना। तुरंत राजा के सेवकों ने दूकानदार को वहाँ से भगाया। कुछ लोग एक तरफ़ महल गिरा रहे थे और दूसरी ओर नया भवन बनाने लगे। अबू कीर घोड़े पर ही सवार हो इमारत बनानेवालों को आदेश दे रहा था-"यहाँ पर ऐसा बनाओ, वहाँ इस तरह बनाओ।" बहुत जल्द ही दुनिया का सबसे बड़ा और सुंदर रंगरेज़ी कारखाना बनकर तैयार हो गया।

तब राजा ने अबू कीर को बुलाकर कहा-"अब तुम अपना काम शुरू करो। इस काम के लिए फिलहाल तुम पांच हज़ार दीनार ले लो। यह बात याद रखो कि मैं तुम्हारी रंगरेज़ी का काम देखने को उत्सुक हूँ।"

अबू कीर को राजा ने जो धन दिया, उसे उसने अपने घर में छिपा दिया। थोड़े छुट्टे पैसों से रंगों के लिए आवश्यक सस्ती दवाएँ दूकानों में खरीद ली और सारे हौज़ों में रंग भर दिये।

राजा ने अबू कीर के पास पांच सौ सूती और रेशमी क़ीमती थान भेजे। अबू कीर ने उनमें से कुछ कपड़ों पर पक्के रंग चढ़ाये और कुछ कपड़ों पर दो-चार रंग मिलाकर नये क़िस्म के रंग बनाये। उन रंगे हुए कपड़ों को अबू कीर ने कारखाने
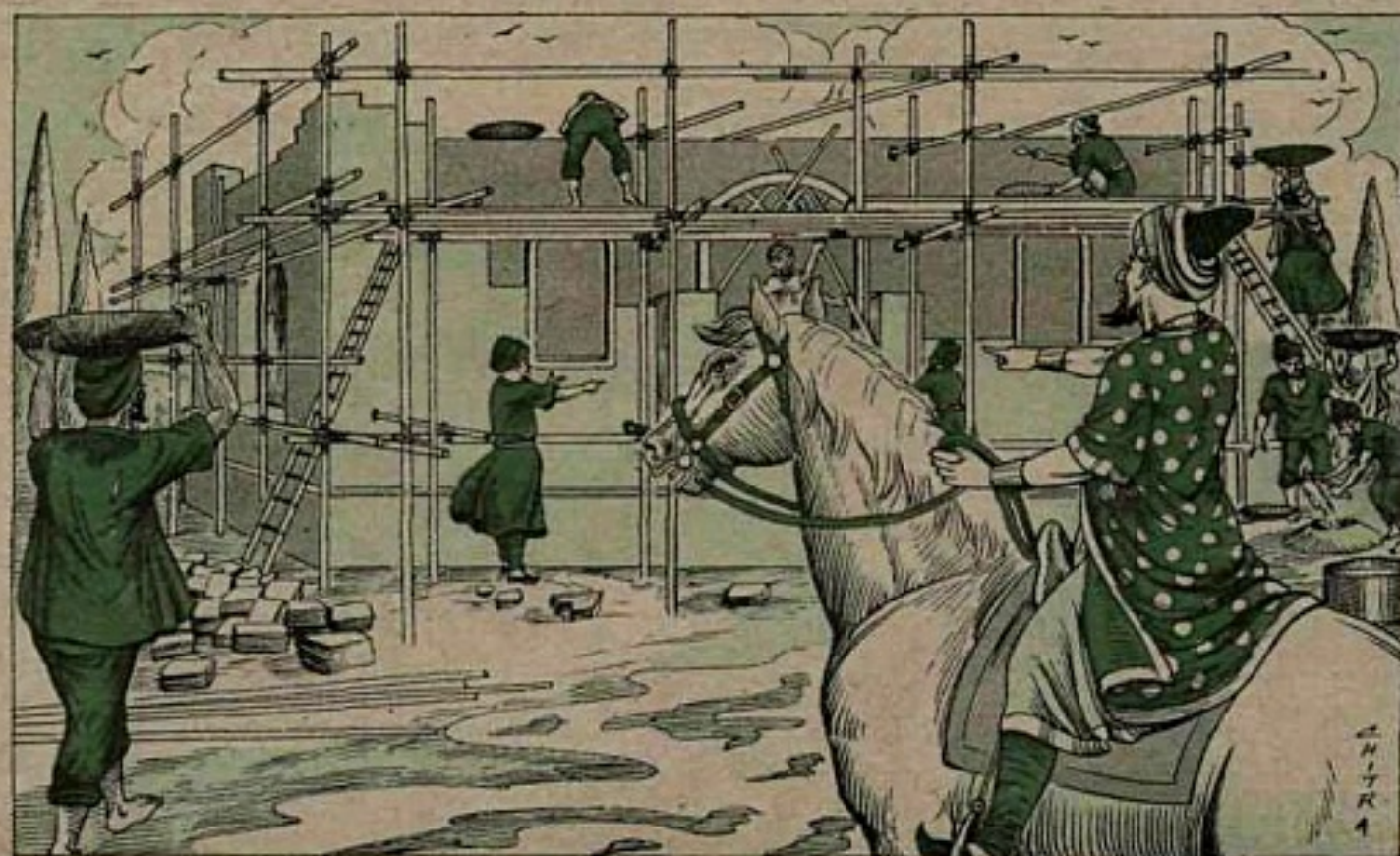
के बाहर सारी गली में सुखाया। धूप में चमकते हुए वे रंग देखने में बहुत सुंदर लग रहे थे।

उस दृश्य को देखने के लिए शहर के लोग दल बांधकर आने लगे। दूकानदार सब अपनी दूकानें बन्द करके उन रंगीन कपड़ों को देखने आये। बच्चे और औरतें उन रंगबिरंगी कपड़ों को देख ख़ुशी के मारे चिल्लाने लगे। कई लोगों ने अबू कीर से उन रंगों के नाम पूछकर जान लिया।

लोगों का यह कोलाहल देख स्वयं राजा ही उसे देखने आया। धूप में चमकते सुंदर दिखाई देनेवाले उन रंगबिरंगी कपड़ों के तोरणों को देख राजा तन्मय हो मूर्तिवत खड़ा रह गया।

राजा की समझ में न आया कि ऐसे निपुण रंगरेज़ का सम्मान कैसे करे? राजा ने अपने वज़ीर को घोड़े से उतरने का आदेश दिया और उस पर अबू कीर को बिठाया। इसके बाद रंगबिरंगी कपड़े लदवाकर अबू कीर को साथ ले अपने महल में चला गया। अबू कीर को बहुत-सा सोना और विशेष अधिकार देकर भेज दिया। इसके बाद राजा ने उन रंगीन कपड़ों से अपने, अपनी पत्नी तथा राज कर्मचारियों के लिए कपड़े बनवाये। फिर एक हज़ार थानों को रंगने के लिए रंगरेज़ी दूकान में भेजा।

कुछ समय बाद शहर के सभी प्रतिष्ठित परिवारों के लोग रंगबिरंगी पोशाकें पहने दिखाई देने लगे। दरबारी रंगरेज़ अबू कीर शहर का सबसे बड़ा धनी बन गया। शहर के चालीसों रंगरेज़ों ने अबू कीर के पास आकर क्षमा मांगी और उससे प्रार्थना की कि उन्हें बिना वेतन के उसके यहाँ काम सीखने का मौक़ा दे। अबू कीर ने सब का अपमान करके भेज दिया। धीरे धीरे सारे शहर में रंगबिरंगी पोशाकें दिखाई देने लगीं। (और है)

विचित्र घटना

मणिपुर के राजा चन्द्रसेन की इकलौती बेटी का नाम चन्द्रमुखी था। बचपन में ही चन्द्रमुखी की माता का देहांत हो गया था, इसलिए राजा नें उसको बड़े ही लाड़-प्यार से पाला और पोसा। युक्त वयस्का होते होते राजकुमारी सभी विद्याओं में पारंगत हो गयी। चन्द्रसेन ने समय पर अपनी पुत्री का विवाह करना चाहा, पर चन्द्रमुखी विवाह के लिए राजी नहीं हुई।

चन्द्रमुखी अकसर अपनी सहेलियों के साथ मिलकर शिकार खेलने जाती थी। एक दिन शिकार खेलते-खेलते वह दूर चली गयी और अपनी सखियों तथा परिवार से अलग हो गयी। सबने राजकुमारी को ढूंढ़ा, पर वह कहीं दिखाई न दी। इसलिए वे लोग यह सोचकर लौट आये कि शायद राजकुमारी खूंख्वार जानवरों का शिकार हो गयी होगी। सबने राजा को अपना संदेह बताया।

मगर चन्द्रमुखी अपने परिवार से पहले महल को लौट आयी और अंधेरा होने के पूर्व ही अपने कमरे में विश्राम करने चली गयी। उसने अपनी दासियों को आदेश दिया कि सवेरा होने तक कोई उसे न जगावे। उस दिन से राजकुमारी खोयी सी रहने लगी। लेकिन उसका कारण कोई जान नहीं पाया। हर रोज वह सूर्यास्त के पहले अपने कमरे में चली जाती, दर्वाज़े बन्दकर सवेरे तक बाहर न आती।

राजा ने सोचा कि राजकुमारी का विवाह जल्दी करना अच्छा होगा। इसके लिए राजकुमारी भी राजी हो गयी। राजा ने प्रसन्न होकर राजकुमारी के स्वयंवर का प्रबंध किया। चन्द्रमुखी बड़ी

दर्शनलाल श्रीवास्तव

सुंदर थी, इसलिए उसके साथ-विवाह करने के ख्याल से अनेक राजकुमार स्वयंवर में भाग लेने आ पहुँचे।

निश्चित समय पर चन्द्रमुखी पर्दा काढ़े हाथ में वरमाला लिये स्वयंवर के मण्डप में आयी। उसने किसी भी राजकुमारी की ओर ध्यान से नहीं देखा। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर उसने हठात् एक राजकुमार के कंठ में वरमाला डाल दी और वह तुरंत अंतःपुर में चली गयी। तब तक सूर्यास्त हो चुका था।
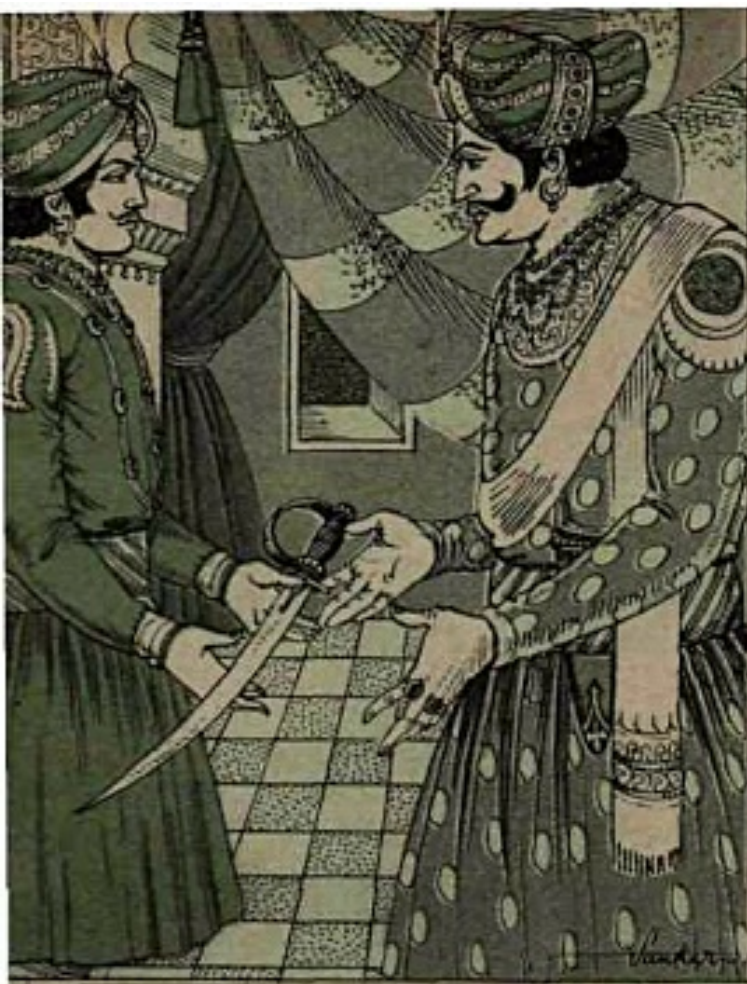
राजकुमारी का यह व्यवहार देख सब आश्चर्य में आ गये। ऐसा स्वयंवर किसी ने कभी कहीं न देखा था। स्वयंवर समाप्त हो चुका था। इसलिए वरमाला प्राप्त चेदी राज्य के युवराज चक्रसेन को छोड़ बाकी राजकुमार अपने अपने देश को लौट गये। चक्रसेन ने उस दिन राजा चन्द्रसेन का आतिथ्य स्वीकार किया। दूसरे दिन राजा चन्द्रसेन अपने दामाद की तलवार को लेकर सादर उसे तथा उसके परिवार को चेदी राज्य में भेज दिया। तलवार के साथ राजकुमारी का विवाह करने की परिपाटी मणिपुर राज्य में प्रचलित थी।

इसके बाद चन्द्रमुखी तथा चक्रसेन की तलवार का वैभव के साथ विवाह संपन्न हुआ। विवाह के बाद भी चन्द्रमुखी के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया। एक महीने तक अपनी पुत्री को अपने राज्य में रखकर एक शुभमुहूर्त में राजा चन्द्रसेन ने अपनी कन्या को सपरिवार ससुराल में भेजा।

चन्द्रमुखी के आगमन पर चेदी राज्य में बड़ा उत्सव मनाया गया। उस रात को वधू और वरों का मिलन कराना था, पर चन्द्रमुखी सूर्यास्त के पहले भोजन समाप्त कर अपनी सखियों के साथ शय्यागृह में चली गयी और अन्धेरा होने के पहले सबको बाहर भेजकर कमरे में वह अकेली रह गयी।

चक्रसेन थोड़ी रात गये शयनगृह में गया। मगर वहाँ चन्द्रमुखी न थी। चक्रसेन ने सुन रखा था कि उसकी पत्नी बड़ी सुंदर है, मगर उसने अभी तक उसका चेहरा न देखा था। अपनी पत्नी को वहाँ न पाकर वह बड़ा निराश हुआ। उसने लोगों से दरियाफ़्त भी किया, मगर कोई उसका पता बता न सका। सारे राजमहल में उसे ढूँढ़ा गया, लेकिन उसका पता न लगा।

चक्रसेन उसी रात को अपनी पत्नी की खोज में घोड़े पर चल पड़ा। नगर पार करने पर धुंधली चांदनी में उसे एक बूढ़ी दिखाई दी। उसने बूढ़ी के पास जाकर पूछा—"नानीजी, क्या इधर से किसी जवान औरत को जाते तुमने देखा?"

बूढ़ी मन ही मन गुनगुनाते बोली—"तुम कौन हो, बेटा? क्या चाहते हो?"

चक्रसेन ने बूढ़ी को सारी कहानी सुनायी—"हाँ, बेटा! वही युवती होगी! थोड़ी देर पहले इधर से भाग निकली! उफ़, कैसा अन्याय है! वह भागी ही क्यों? अगर तुम मुझे भी घोड़े पर बिठाओगे, तो हम दोनों मिलकर उसे ढूँढ़ लेंगे।" बूढ़ी ने जवाब दिया।

दोनों घोड़े पर सवार हो चारों तरफ़ बड़ी देर तक ढूँढ़ते रहे, आखिर थक

भी गये, मगर चन्द्रमुखी का कहीं पता न लगा।

"बेटा, हम बहुत दूर आ गये। थोड़ी देर में सवेरा होने को है। हम इस पेड़ के नीचे थोड़ा आराम करेंगे।" बूढ़ी ने कहा। तब तक धुंधली चांदनी भी गायब हो अंधेरा फैल गया था, इसलिए चक्रसेन भी बूढ़ी की सलाह के अनुसार एक पेड़ के नीचे लेटकर सो गया।

दूसरे दिन सूर्योदय के बाद चक्रसेन ने नींद से जागकर देखा, मगर बूढ़ी कहीं दिखाई न दी। उठ कर वह टहलने लगा, उसे थोड़ी दूर पर एक झरना दिखाई दिया। उसके किनारे एक झोंपड़ी थी।

झोंपड़ी के सामने कोई औरत खड़ी हुई थी। चक्रसेन ने देखा, वह बूढ़ी न थी बल्कि कोई जवान औरत थी। देखने में सुंदर भी थी। मगर उसके कपड़े बूढ़ी के कपड़ों जैसे लग रहे थे।

"तुम कौन हो? क्या तुमको यहाँ पर कोई बूढ़ी नानी दिखाई दी?" चक्रसेन ने उस युवती से पूछा।

"मेरा नाम चंपा है। वह बूढ़ी मेरी नानी ही होगी। वह एक जादूगरनी है। शायद कोई जड़ी-बूटी लाने गयी होगी। हम दोनों इसी झोंपड़ी में रहती हैं।" युवती ने उत्तर दिया।

चक्रसेन के मन में उस युवती को छोड़ कर जाने की इच्छा न हुई। युवती के प्रति चक्रसेन के मन में मोह भी पैदा हुआ। उसने बड़ी देर तक युवती के साथ वार्तालाप किया और उस झोंपड़ी में अपना समय बिताया, अपनी यादगारी के लिए उसे अपनी अंगूठी उपहार में दी, फिर मिलने का आश्वासन दे अपने महल को लौट गया।

चक्रसेन के माता-पिता ने चन्द्रमुखी की बड़ी खोज करायी, लेकिन उसके दिखाई न देने पर यह निश्चय किया कि अब वह दिखाई न देगी, अगर दिखाई देने पर भी उसे अपनी बहू के रूप में स्वीकार नहीं किया जायगा। चक्रसेन रोज़ सवेरे चंपा के पास जाता, शाम तक उसके साथ बिताकर घर लौटता। धीरे धीरे चक्रसेन

के मन में उस युवती के प्रति प्रेम पैदा हो गया। अब एक घड़ी भी उसे छोड़कर रहना चक्रसेन के लिए असंभव-सा मालूम होने लगा।

इसलिए चक्रसेन ने एक दिन चंपा से कहा–"तुम मेरे साथ चली आओ। हम दोनों विवाह करके आराम से अपने दिन बितायेंगे! मेरे माता-पिता भी इस पर कोई आपत्ति न उठायेंगे।"

"यह अभी संभव न होगा। मेरी नानी मुझे एक दिन छोड़ जायेगी। वह दिन भी निकट है। उस वक़्त में ज़रूर आपके घर आऊँगी। हमारा गांधर्व विवाह तो हो ही गया है। थोड़े दिन सब्र कीजियेगा।" चंपा ने समझाया।

चंपा गर्भवती हो गयी और धीरे-धीरे नौ महीने भी पूरे हो गये। इस पर चक्रसेन ने कहा–"इस हालत में यहाँ पर तुम्हारा प्रसव कठिन होगा, इसलिए तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारे प्रसव के लिए आवश्यक सारा प्रबंध करवा दूंगा।"

मगर चंपा ने नहीं माना।

"मैं तुम्हारी मदद के लिए कम से कम परिचारिकाओं और धाई को भेज दूंगा।" इस बात के लिए ही सही, तुम मान जाओ। चक्रसेन ने कहा।

चंपा इसके लिए भी तैयार नहीं हुई। उसने समझाया–"आप किसी को यहाँ न लाइये। मेरी नानी सौ धाइयों के बराबर है। इसलिए आप मेरे प्रसव

के बारे में चिंता न करे।" चक्रसेन रोज़ आकर चंपा को देख जाता था, एक दिन रात को उसे नींद न आयी। उसे न मालूम क्यों संदेह हुआ कि उस रात को चंपा का प्रसव होगा। प्रसव के समय उसके निकट रहने की इच्छा हुई। इसलिए वह चंपा की प्यारी सहेली मालती को साथ ले किसी से कहे बिना चंपा की झोंपड़ी के पास जा पहुंचा।

झोंपड़ी में से प्रसववेदना की आवाज़ सुनाई दे रही थी। चक्रसेन ने बाहर ही रहकर चंपा की मदद के लिए मालती को भीतर भेजा। मालती भीतर तो गयी, मगर दूसरे ही क्षण चिल्लाकर बाहर भाग आयी। चक्रसेन घबरा उठा, उसने भीतर जाकर जो दृश्य देखा, उससे वह एकदम सन्न रह गया।

झोंपड़ी के भीतर प्रसव-पीड़ा का अनुभव करनेवाली औरत चंपा नहीं, बल्कि बूढ़ी नानी थी। इस दृश्य को देख चक्रसेन का सर चकरा गया। उसने बूढ़ी से पूछा—"नानीजी, तुम्हारी यह हालत कैसी? चंपा कहाँ?"

पीड़ा का अनुभव करते बूढ़ी कराह उठी—"मुझे मदद चाहिये। मालती को भेजिये।"

लाचार हो चक्रसेन ने बाहर आकर मालती को भीतर भेजा। मगर चक्रसेन के मन में यह संदेह भी पैदा नहीं हुआ कि बूढ़ी औरत मालती का नाम कैसे जानती है।

मालती के भीतर पहुँचने के बाद दूसरे ही क्षण में नानी एक सुंदर लड़के का जन्म देकर युवती के रूप में बदल गयी।

"चन्द्रमुखी! तुम हो?" मालती चिल्ला पड़ी। बाहर से चक्रसेन ने ये शब्द सुने। उसने भीतर जाकर चंपा और शिशु को भी देखा।

"चंपा! तुम्हारा ही प्रसव हुआ है? तो फिर वह बूढ़ी कहाँ?" चक्रसेन ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"मैं ही वह बूढ़ी हूँ, मैं ही चंपा भी हूँ। अनजाने में एक अपराध कर बैठी। शाप के कारण ये सारी तक़लीफ़ें झेलीं! इस शिशु के जन्म के साथ मेरा शाप भी जाता रहा।" इन शब्दों के साथ चन्द्रमुखी ने अपनी कहानी सुनायी :

"मैं जिस दिन शिकार खेलने गयी, उस दिन शिकार खेलते-खेलते अपने परिवार से अलग हो गयी। मुझे लगा कि झाड़ियों के पीछे कोई हिरन है। मैंने बाण चलाया तो वह एक मुनि से जा लगा। मुनि ने क्रोध में आकर मुझे बूढ़ी हो जाने का शाप दिया। मैंने मुनि के चरणों पर गिर कर प्रार्थना की कि वे अपने शाप को वापस ले ले। मुनि ने कृपा करके बताया कि मैं रात के वक़्त बूढ़ी बन जाऊँगी और एक पुत्र के पैदा होने पर मेरा शाप जाता रहेगा। इसलिए मैं रात के समय सब की आँख बचा कर अकेली रहती आयी। मैंने विवाह भी इसलिए किया कि एक पुत्र का जन्म देकर शाप से मुक्त हो जाऊँ। उस वक़्त मेरे सामने यह सवाल न था कि मेरे होनेवाले पति कौन है? मगर विवाह के होने के बाद भी मेरी समस्या हल नहीं हुई। रात के वक़्त मैं आपके सामने नहीं आ सकती थी। भाग्यवश रात के वक़्त आप की दृष्टि में पड़े बिना ही मैं गर्भवती हुई। एक पुत्र का जन्म देकर शाप से मुक्त हो गयी। मगर एक वर्ष तक मैं मानव-समाज से दूर एक टूटी-फूटी झोंपड़ी में रही। राजकुमारी होकर भी मैंने नाना प्रकार की यातनाएँ झेलीं।" चन्द्रमुखी ने अपनी कहानी समाप्त की।

सारी कहानी सुनने पर चक्रसेन ने अपनी पत्नी के साहस और दृढ़ निश्चय का अभिनंदन किया। वह अपनी पत्नी और पुत्र को राजधानी में ले गया। सारी कहानी अपने माता-पिता को सुना कर अपनी पत्नी और पुत्र के साथ सुखपूर्वक दिन बिताने लगा।

सर का मूल्य !

एक राजा शिकार खेलते थक गया और एक कुंड के पास आराम करने लगा। राजा को प्यास लगी, पास में कुआं तो था, पर पानी भरने के लिए रस्सा न था।

कुएँ से थोड़ी दूर पर एक झोंपड़ी थी। उसमें एक अंधा साधु रहता था। राजा ने अपने एक सेवक को झोंपड़ी में जाकर रस्सा मांग लाने को भेजा।

सेवक ने साधु के पास जाकर कहा–"अरे बैरागी! पानी भरने के लिए रस्सा दे दो।"

"मेरे पास रस्सा नहीं है।" साधु ने जवाब दिया। इसके बाद राजा ने अपने मंत्री को भेजा।

मंत्री ने जाकर कहा–"बैरागीजी! तुम्हारे पास रस्सा जरूर होगा। जरा दे दो, पानी भर कर लौटा देंगे।" "अभी, मेरे पास सचमुच रस्सा नहीं है।" साधु ने उत्तर दिया।

इस बार राजा खुद झोंपड़ी के पास गया और बोला–"साधु महाराज! मैं प्यास के मारे परेशान हूँ। पानी भरने के लिए कृपया रस्सा दे दीजिये।"

"महाराज, मैं आपको पानी ही पिलाता हूँ। ज़रा ठहर जाइये।" ये शब्द कहते साधु उठ खड़ा हुआ।

राजा ने अश्चर्य में आकर पूछा–"तुमको कैसे मालूम कि मैं राजा हूँ?"

"महाराज! सर का मूल्य मुँह ही बता देता है।" अंधे साधु ने उत्तर दिया।

हिम्मत का फल

एक गाँव में एक ब्राह्मण था। वह लोगों की मृत्यु होने पर उनका दहन-संस्कार करवाया करता था। स्वभाव से हिम्मतवर था। दुर्घटना तथा अत्महत्या के द्वारा मरनेवालों का भी दहन-संस्कार करवाता था। जहाँ कहीं भी कोई फाँसी लगाता या किसी की हत्या होती, तो लोग उन लाशों का दहन-संस्कार करवाने के लिए इसी ब्राह्मण को बुलाते। क्योंकि ऐसी लाशों का दहन-संस्कार करवाने में साधारण ब्राह्मण डरते थे। उनका विश्वास था कि अकाल मृत्यु को प्राप्त लोग भूत-प्रेत बन जाते हैं।

एक बार उस ब्राह्मण को तीन-चार कोस दूर के गाँव से बुलावा आया। ब्राह्मण ने अपना कार्य समाप्त करके देखा, संध्या हो चली थी।

गाँववालों ने समझाया—"इस अंधेरे में आप अपने गाँव न जाइयेगा। रात यहीं बिताकर कल सुबह उठ कर चले जाइये।"

"रात यहीं बिताऊँ? एक-दो घंटे में चला जाऊँगा।" ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"वैसे बात कुछ नहीं, मगर लोग कहते हैं कि हमारे और आप के गाँव के बीच में जो श्मशान है, उसमें भूत-प्रेत हैं। रात के वक़्त मुसाफ़िरों को पकड़कर तंग करते हैं।" गाँववालों ने समझाया।

ब्राह्मण ठहाका मार कर हँस पड़ा और बोला—"भूत-प्रेत मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? मुझे तो आज रात को ही घर पहुँचना है।" यह कहकर ब्राह्मण चल पड़ा।

चाँदनी की रात थी। आसमान साफ़ था। इसलिए ब्राह्मण बेफ़िक्र हो चलने लगा। लगभग आधा रास्ता तै करने पर उसे एक झोंपड़ी दिखाई दी। पहले

शरद कुमार
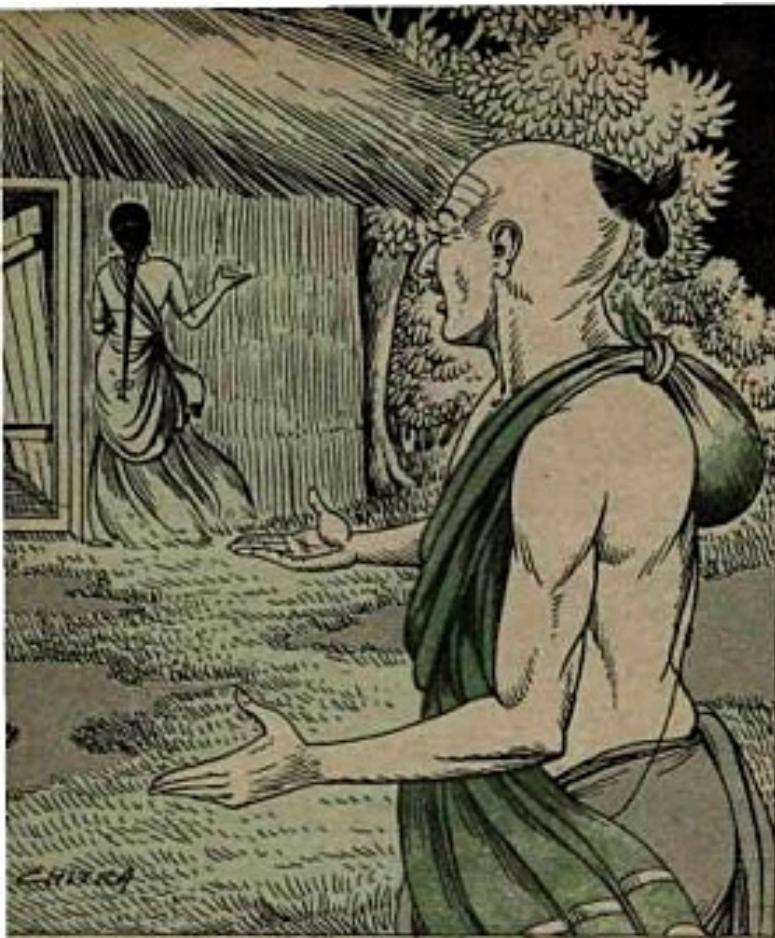
ब्राह्मण ने सोचा कि झोंपड़ी में कोई रहता न होगा, मगर ध्यान से देखने पर झोंपड़ी के सामने छाया में एक औरत खड़ी दिखाई दी। वह दर्वाज़े की तरफ़ मुंह किये खड़ी थी, इसलिए ब्राह्मण के वहाँ पर पहुँचने पर भी उसने उसकी ओर न देखा।

ब्राह्मण ने सोचा–"यह औरत अपने पति या सास से झगड़ा करके घर से भाग आयी होगी। सवेरे होने के पहले यह किसी नदी या कुएँ में कूद कर जान दे देगी। ऐसी अनेक औरतों की लाशों का मैंने खुद अपने हाथों से दहन-संस्कार कराया है। मगर इस औरत को समझा-बुझा कर उसके घर भिजवा दूंगा।"

यह सोच कर ब्राह्मण ने उस औरत से पूछा–"अरी अभागिन, तुम कौन हो? रात के वक़्त अकेली यहाँ पर क्यों हो? तुम अपनी तकलीफ़ मुझ से बताओ। मैं किसी से कहूँगा तक नहीं। तुम को अगर एतराज़ न हो तो तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा देता हूँ।"

वह औरत वैसे ही खड़ी रही और तुनक कर बोली–"दूसरों की बातों में तुम क्यों दखल देते हो? अपने रास्ते चले क्यों नहीं जाते?"

ब्राह्मण ने सोचा कि यह औरत हठी है, वह भी खीझ कर बोला–"अरी, नाराज़ क्यों होती हो? इस रात के वक़्त तुम्हें अकेली छोड़ जाने को मेरा मन नहीं मानता। कम से कम तुम यह तो बताओ कि तुम किस गाँव की रहने वाली हो? या अपना नाम बताओ, नाम भी बताना नहीं चाहती हो तो अपने घरवालों का पता तो बताओ, ताकि उन्हें मैं ख़बर दे दूं। वे ही लोग आकर तुम्हें घर ले जायेंगे।"

"ठीक से समझाने पर तुम नहीं जाओगे। अच्छा, ठहर जाओ। मैं तुम में प्रवेश कर जाऊँगी।" इन शब्दों के साथ वह घूम पड़ी। उसके चेहरे पर भयंकरता नाच रही थी। ब्राह्मण ने समझ लिया कि यह ज़रूर पिशाचिनी होगी।

गयी है। इसने सब केले खा डाले, भोली बन कर बैठ गयी है। क्या मैं इसकी करतूत को समझ नहीं पाऊँगी।" सास ने एक साँस में असली बात कह डाली।

"बहन, तुम घबराती क्यों हो? फलों की टोकरी अटारी पर है। देख लो तो!" ब्राह्मण ने कहा। "यहाँ पर मैंने टोकरी रख दी है। वह अटारी पर कैसे जायेगी? इसीने रख दी होगी, या किसी से रखवा दी होगी!" सास ने इन शब्दों के साथ बहू की ओर घूर कर देखा।

"पहले तुम अटारी पर देख तो लो। मुझे भी यह साबित करने दो कि फलों की टोकरी अटारी पर है कि नहीं।" ब्राह्मण ने समझाया।

ढूंढ़ने पर अटारी पर फलों की टोकरी मिल गयी। "तब तो उस पिशाचिनी का कहना सच है।" ब्राह्मण ने आश्चर्य में आकर कहा।

"पिशाचिनी कैसी?" सास ने संदेह भरे स्वर में पूछा।

ब्राह्मण ने पिशाचिनी की सारी बातें बतायीं। सास को ब्राह्मण की हिम्मत पर आश्चर्य हुआ। बहू रोना छोड़ हँसते दिखाई दी।

अपनी करनी के सफल होते देख ब्राह्मण ने सास से कहा—"देखती हो न? आज तुम्हारी बहू की आत्महत्या करने से बचा पाये। मगर एक बात सच है कि तुम अपने व्यवहार को नहीं बदलोगी तो एक न एक दिन तुम्हारी बहू जरूर आत्महत्या कर बैठेगी। इसके बाद तुम भी पछताओगी। अब तुम्हारी इच्छा।"

सास ने बहू की ओर मुड़कर कहा—"अरी बेटी! मेरी इज्जत धूल में मत मिलाओ। तुम चन्दमामा भी मांगोगी तो ला दूंगी। मगर ऐसा दुस्साहस मत करो, बेटी! तेरा पुत्र होगा।"

ब्राह्मण ने निश्चय कर लिया कि आइंदा उस सास के ज़रिये बहू को कोई तक़लीफ़ न होगी, तब वह ब्राह्मण निश्चित अपने घर चला गया।

किसका नौकर ?

एक दिन बादशाह अकबर बीरबल के साथ टहल रहा था। उसने एक बैंगन का बगीचा देखा। बैंगन खूब चमक रहे थे। "बैंगन बड़े सुंदर हैं न ?" अकबर ने कहा

"जी हाँ, जहाँपनाह ! बैंगन तो तरकारियों का राजा है।" बीरबल ने उत्तर दिया।

"ये बैंगन देखने में सुंदर जरूर होते हैं, मगर खाने में कसैले लगते हैं। जरा पक गये तो उसमें बीज ही बीज होते हैं। खा नहीं सकते।" अकबर ने कहा।

"जी हाँ, जहाँपनाह ! बैंगन की तरकारी तबीयत के लिए भी अच्छी नहीं होती। बीमार पड़ने पर वैद्य उससे परहेज रखने को कहते हैं। ऐसी ख़राब तरकारी दूसरी नहीं होती ?" बीरबल ने जवाब दिया।

"अरे, अभी, अभी तुम बैंगन की तारीफ़ कर रहे थे। फिर यह क्या कहते हो ?" अकबर ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"हाँ सरकार। मैं आप का नौकर हूँ, बैंगन का नहीं।" बीरबल ने झट कहा।

अनबूझा सवाल

एक गाँव में एक तालाब था। उसके किनारे एक बूढ़ी औरत अपने जवान बेटे के साथ रहा करती थी। बूढ़ी की उम्र ज्यादा हो गयी थी, इसलिए वह काम-वाम नहीं कर पाती थी। लेकिन उस का बेटा मज़बूत था। वह जी तोड़ मेहनत करता था, फिर भी उन की गरीबी बढ़ती ही जाती थी।

जवान दूसरों के खेत इकरारनामे पर लेता, फ़सल पैदा करता। मगर साल भर बाद ज़मीन के मालिक को उस का हिस्सा अनाज देने के बाद उसे बहुत कम बच जाता था।

वह युवक अपने मन में सोचता, "मैं पल भर भी आराम किये बिना मेहनत करता हूँ, फिर भी मेरी गरीबी ज्यों की त्यों क्यों है?" बहुत सोच-विचारने पर भी उसके सवाल का जवाब नहीं मिलता। धीरे धीरे यह सवाल उसके दिमाग को चाटने लगा। लगता था कि उस सवाल का समाधान ढूंढ़ने पर ही वह निश्चित सो सकता है।

उन्हीं दिनों में उस युवक को एक समाचार मिला कि पश्चिमी पहाड़ी पर कोई साधु महराज आ पधारे हैं और वे ज्योतिष भी जानते हैं। कोई भी व्यक्ति, जो भी सवाल करे, उस का वह समाधान देते हैं। युवक ने भी यह निश्चय किया कि वह अपना सवाल साधु के सामने रख कर उसका जवाब पायेगा। वह अपना यह निर्णय अपनी माँ को सुना कर पहाड़ की ओर चल पड़ा।

सात दिन की यात्रा के बाद वह रास्ते के किनारे पर स्थित एक झोंपड़ी के पास पहुँचा और दर्वाजा खटखटाया, एक बूढ़ी औरत ने दर्वाजा खोल कर उसका स्वागत किया और युवक से पूछा—"बेटा, तुम

मनोहर शुक्ल

कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जाते हो?" युवक ने सच्ची बात बता दी।

बूढ़ी ने युवक को खाना खिलया और उसके सोने का भी इंतज़ाम किया। दूसरे दिन सवेरे जब युवक रवाना हुआ तब बूढ़ी ने उस से कहा–"बेटा, उस साधुमहाराज से पूछ कर मेरे भी सवाल का जवाब ला दोगे? मेरी बेटी बड़ी सुंदर है। मगर वह कभी बोलती नहीं। तुम उस के गूंगेपन का इलाज़ क्या है, साधुमहाराज से पता लगा आओ।"

"अच्छी बात है! मैं तुम्हारे सवाल का जवाब ला दूंगा।" यह कह कर युवक चल पड़ा।

युवक ने फिर एक सत्ताह की यात्रा की। आखिर थक गया। तब उसने रास्ते के किनारे के एक घर के पास पहुँच कर दर्वाज़ा खटखटाया।

एक बूढ़े आदमी ने दर्वाजा खोलकर युवक को भीतर बुलाया। उस पर रहम खाकर खाना खिलाया, तब उसकी यात्र का कारण पूछा। युवक ने बूढ़े से अपनी यात्रा का कारण बताया।

रात को युवक ने बूढ़े के घर में आराम किया। दूसरे दिन सवेरे जब युवक चलने लगा, तब बूढ़े ने कहा–"बेटा, उस साधुमहाराज से पूछ कर मेरे भी सवाल का जवाब जान लो। मेरे पिछवाड़े में एक नींबू का पेड़ है। उस में फूल तो लगते हैं, मगर फल नहीं लगते। उस में फूल लगने के लिए क्या करना होगा? जरूर पता लगा लो।"

युवक ने स्वीकृति दी और चल पड़ा। कुछ दिन तक वह पश्चिम की ओर चलता गया। आखिर उसे एक पहाड़ दिखाई दिया। पास में एक पहाड़ी नदी ज़ोर से वह रही थी। उसे कैसे पार करे? युवक की समझ में नहीं आया। उसे पार करने के लिए कहीं पुल भी न था।

युवक सोचते हुए एक चट्टान पर जा बैठा। उसी समय नदी में से एक महा

युवक जितना सोना ले जा सकता था, उतना लेकर कुछ दिन बाद बूढ़ी के घर पहुँचा और बोला–"नानीजी! साधू महाराज ने बताया है कि तुम्हारी बेटी जिसके साथ शादी करनेवाली है, उसे देखते ही बोलने लग जायगी।"

युवक ये बातें कह ही रहा था तभी बूढ़ी की पुत्री बाहर आयी और बोल उठी–"माँ? ये युवक कौन हैं?"

बूढ़ी अपनी पुत्री के मुँह से बोली के फूटते ही एक दम उछल पड़ी और बोली–"बेटा, तुम्हीं इसके पति हो! तुम इसे अपने साथ ले जाकर शादी कर लो।"

युवक उस युवती को साथ लेकर घर लौटा तो देखता क्या है, उस की माँ की हालत बड़ी ख़राब है। अपने पुत्र के बहुत दिन बाद भी लौटते न देख बूढ़ी दिन-रात रोती रही जिससे उसकी दृष्टि जाती रही। अब वह अंधी हो गयी थी।

"माँ! मैं तुम्हारे लिए एक सुंदर बहू लाया हूँ।" ये शब्द कहते युवक ने उस युवती को अपनी माँ के हाथों में सौंपा। बूढ़ी ने उस युवती को गोद में लेकर उसके सर और चेहरे पर हाथ फेरते हुए कहा–"मेरी बेटी! जुग-जुग जिओ।"

"माँ, लो, एक मणि भी लाया हूँ।" ये शब्द कहते मणि को अपनी माँ के सामने रखा।

"बेटा, मैं तुम्हारे वास्ते रो-रोकर आँखें खो गयी हूँ। मेरी आँखें दीखती नहीं।" बूढ़ी ने कहा।

"उफ़! माँ अगर तुम्हारी आँखें होतीं तो तुम मेरे लाये सोना-चांदी, मणि और अपनी बहू को देख कितना खुश होती!" युवक ने कहा।

युवक ये बातें कह ही रहा था, तभी उसकी माँ की दृष्टि लौट आयी। यह साबित हुआ कि उस मणि में वह शक्ति है कि उससे जो भी वर मांगा जाय, सच हो कर निकलेगा। इसलिए वह युवक, उसकी माँ और पत्नी उस दिन से आराम से अपने दिन बिताने लगे।

"तुम से वही अच्छे हैं।"

एक गांव में एक साधु आया। वह किसी से बोलता न था। हमेशा मौन रहता था। कोई खाने के लिए कुछ देता तो खा लेता, वरना उपवास करता।

उस गांव में रामदास नामक एक गृहस्थ था। साधु के इस व्यवहार पर वह बहुत प्रभावित हुआ। साधु को उपवास से बचाने के लिए वह रोज फल, दूध या भोजन लाकर दिया करता था। साधु उसे चुपचाप खा लेता था।

उसी गाँव में नीलकंठ शास्त्री नामक एक बड़ा पंडित था। उसके दर्जनों शिस्य भी थे। रामदास के इस व्यवहार को देख शास्त्री के मन में साधु के प्रति ईर्ष्या पैदा हुई। उसे लगा कि रामदास उस का शिस्य बनकर ये चीजें रोज उसे दे दिया करे तो क्या ही अच्छा हो!

आख़िर शास्त्री से रहा न गया। उसने रामदास से कहा–"अरे तुम उस कमबख़्त साधु के चंगुल में कैसे फँस गये? क्या उसने वेदों का अध्ययन किया या शास्त्र पढ़े? वह तो अव्वल दर्जे का चोर है। बदमाश है।"

"शास्त्री जी! मैं तो ये बातें नहीं जानता। उस साधु महाराज के बारे में भी कुछ नहीं जानता; लेकिन एक बात सच है। उस पुण्यात्मा को कभी दूसरों की निंदा करते मैंने नहीं सुना!" यह कहकर रामदास अपने रास्ते चला गया।

पांडवों ने सैंधव का पराभव करके उसे समझा-बुझाकर भेज दिया। वे लोग काम्यक वन में ही रह रहे थे। उनके पास एक दिन मुंनि मार्कंडेय आ पहुँचा। युधिष्ठिर ने उसे अपनी और द्रौपदी की कठिनाइयों का परिचय देकर पूछा– "महात्मा, क्या प्राचीन काल में द्रौपदी जैसी किसी प्रतिव्रता ने कष्ट भोगे?"

इस पर मार्कंडेय मुनि ने पांडवों को सावित्री की कहानी यों सुनायी–पाचीन काल में मद्रदेश पर अश्वपति नामक एक धर्मात्मा शासन कर रहा था। उसे कोई संतान न थी। इस पर उसने बड़ी निष्ठा के साथ सावित्री देवी की उपासना करते अनेक होम किये। अंत में होमकुंड में से सावित्री देवी ने प्रत्यक्ष होकर पूछा– "राजन्, तुम क्या चाहते हो?"

इस पर अश्वपति ने कहा–"देवी, मेरे वंश की लता को आगे बढ़ाने वाले पुत्र मुझे चाहिए।"

"राजन्, तुम्हारी इच्छा से मैं पहले ही परिचित हूँ। मैंने ब्रह्मा से पूछा कि वे तुम्हें संतान दे। मगर उन्होंने तुम्हें केवल एक पुत्री देना स्वीकार किया है। इसलिए तुम उसी संतान से तृप्त हो जाओ।" ये शब्द कहकर देवी सावित्री अदृश्य हो गयी।

राजा अश्वपति तपस्या बंद करके अपने नगर को लौट आया और यथा प्रकार राज्य का भार संभालने लगा। कुछ समय बाद उसकी पत्नी मालवी गर्भवती हुई

३६. सावित्री और सत्यवान की कथा

और एक शुभ मुहूर्त में एक सुंदर कन्या का जन्म दिया। राजा अश्वपति प्रसन्न हुआ और देवी सावित्री के वरदान से उत्पन्न होने के कारण उस कन्या का सावित्री नामकरण किया।

सावित्री राजा अश्वपति के घर लाड़-प्यार में पलने लगी। वह देखने में ऐसी सुंदर थी कि मानों कोई देवता नारी हो और मानवी के रूप में जन्म धारण किया हो।

सावित्री के युक्तवयस्का होने पर एक दिन अश्वपति ने उससे कहा—"बेटी! तुम विवाह के योग्य हो गयी हो। न मालूम क्यों कोई भी राजकुमार तुम्हारे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट करते हुए आगे नहीं आ रहा है। इसलिए तुम स्वयं अपने योग्य पति का वरण करके मुझे बता दो। मैं उसके साथ तुम्हारा विवाह करके अपना कर्तव्य पूरा करूँगा।"

इस पर सावित्री रथ पर सवार हो अपने पति की खोज में राजर्षियों के आश्रमों की ओर चल पड़ी।

उधर सावित्री पति के अन्वेषण में संचार कर रही थी, इधर एक दिन राजा अश्वपति के पास महामुनि नारद आया और सारे जगत के समाचार सुनाने लगा। उसी समय सावित्री अपनी यात्रा समाप्त कर लौट आयी। वह अपने पिता और महामुनि नारद को प्रणाम करके खड़ी ही रह गयी। तब नारद ने राजा से पूछा— "राजन्, तुम्हारी पुत्री कहाँ गयी थी? यह तो युक्तवयस्का हो गयी है, फिर भी तुमने इसका विवाह क्यों नहीं किया?"

"मुनिवर, मैंने इसे अपने पति का अन्वेषण करने के लिए भेज दिया था। अभी मैं पता लगाता हूँ कि यह किसको वर कर लौट आयी है।" इसके बाद राजा अश्वपति ने अपनी पुत्री से पूछा— "बेटी, तुम जिस काम पर गयी थी, क्या वह सफल हो गया?"

सावित्री ने अपने पिता से यों कहा— "पिताजी! साल्व देश के राजा द्युमत्सेन

उसका कलेजा धड़कने लगा। मगर वह हिम्मतवर कहलाता था, इसलिए अपनी ख्याति को बचाये रखने के ख्याल से संभल कर बोला–"मुझमें प्रवेश करोगी? देखें तो सही। मैं कई दिनों से इसी का इंतज़ार कर रहा था।" इन शब्दों के साथ ब्राह्मण ज़ोर से हँस पड़ा।

पिशाचिनी ने अपने केश झाड़ कर जीभ बाहर निकाली।

ब्राह्मण का डर जाता रहा। उसने पिशाचिनी से कहा–"भूत, प्रेत और पिशाचों को तुम से भी दुगुने जीभ फैलाते मैंने देखा है, समझी?"

यह बात सुनने पर पिशाचिनी मानों लजा गयी। उसने जीभ को भीतर खींच लिया और मुंह तथा कानों से खून गिराने लगी।

"अरी, तुम मुझे डरा नहीं सकती। तुम से ज़्यादा खून गिरानेवाली लाशों को मैंने देखा है। तुम कोई नाक़ाबिल पिशाचिनी सी मालूम होती हो।" ब्राह्मण ने कहा।

पिशाचिनी हताश होकर बोली–"जी हाँ! मैं तुम को सच्ची बात बताये देती हूँ। मेरा कोई अनुभव नहीं है। कल आत्महत्या करनेवाली एक मादा पिशाचिनी हूँ। मैं यही सोच रही हूँ कि यह आत्महत्या कैसे संपन्न करूँ? तुम अपने

रास्ते जाओगे तो निश्चित हो सोच सकती हूँ।"

ब्राह्मण को आत्महत्या करने जानेवाली उस युवती पर दया आयी। प्रकट रूप में वह पिशाचिनी के प्रति सहानुभूति दर्शाने का अभिनय करते बोला–"अरी, मैंने अभी तक जिंदा पिशाचिनी को नहीं देखा। बेचारी वह औरत कौन है?"

"सामने वह जो गाँव दिखायी देता है न? उसके पूर्वी दिशा में रहनेवाले बढ़ई की बहू है।" पिशाचिनी ने जवाब दिया।

"उफ़, ऐसी बात है। बेचारी उस औरत को कौन ऐसी तक़लीफ़ आ गयी?" ब्राह्मण ने पूछा।

"और क्या चाहिये? कमबख्त सास जो है, उसकी जान ले रही है।" पिशाचिनी ने कहा।

"और क्या! इस में तुम्हें क्या तक़लीफ़ है? जो कुछ होता है। सास के ज़रिये ही हो जायगा न?" ब्राह्मण ने कहा।

"तुम इसे ऐसी आसान बात समझते हो! मैंने बहुत सोच-समझ कर एक योजना बनायी है।" पिशाचिनी ने कहा।

"वाह! तो क्या तुम्हारी योजना सफल होगी?" ब्राह्मण ने पूछा।

"क्यों नहीं? कल उसकी सास व्रत रखनेवाली है। टोकरी-भर केले मंगवा रखे हैं। सुमंगलियों को तांबूल के साथ केले भी बांटेगी। आज रात को मैं उस टोकरी को ले जाकर अटारी पर छिपा रखूँगी। तब सास अपनी बहू को डांट-डपट कर गालियाँ देगी और पीटेगी। ऐसी हालत में बेचारी वह भोली भाली बहू दुखी हो आत्महत्या कर बैठेगी!" इन शब्दों के साथ पिशाचिनी ने भोलेपन में आकर अपना रहस्य प्रकट किया।

ब्राह्मण ने मन में पिशाचिनी को कोसा, पर प्रकट रूप में कहा—"वाह, तुम्हारी योजना बड़ी अच्छी है। मगर मेरा समय बीतता जा रहा है। जल्दी घर पहुँचना है।" यह कहकर ब्राह्मण अपने गाँव की ओर चल पड़ा।

रात को घर पहुँच कर ब्राह्मण ने भोजन किया। सवेरे उठ कर पूरब की ओर रहनेवाले उस गाँव को चल पड़ा। बढ़ई का घर ब्राह्मण पहुँचा ही था, तभी उसे भीतर से चिल्लाहटें सुनाई दीं।

ब्राह्मण ने घर में पहुँच कर देखा, सास बहू को डांट रही है और बहू एक कोने में बैठ कर फूट-फूट कर रो रही है।

"अरे, यह कैसा झगड़ा-टंटा है?" ब्राह्मण ने पूछा।

"इस दुष्ट बहू से मैं तंग आ गयी हूँ, पुरोहितजी! मैंने केलों की टोकरी अपने हाथों से यहाँ पर रख दी, वह गायब हो

को बुढ़ापे में एक पुत्र हुआ। दुर्भाग्य से वह राजा अंधा भी हो गया। इससे मौक़ा पाकर उनके शत्रुओं ने द्युमत्सेन के राज्य पर अधिकार कर लिया। इस पर राजा द्युमत्सेन अपनी वृद्ध पत्नी तथा पुत्र को साथ लेकर जंगलों में चले गये। वहाँ पर वे तपस्या करने लगे। द्युमत्सेन का पुत्र बचपन से ही जंगलों में निवास करते मुनिकुमार जैसा बढ़ता गया। वह स्वभाव से कोमल तथा सत्यनिष्ठ था। सदा सत्य बोलते रहने के कारण वह सत्यवान कहलाया। मैं उस सत्यवान को अपने पति के रूप में वर कर लौट रही हूँ।"

यह समाचार सुनते ही नारद बोल उठा—"ओह, सावित्री ने अनजाने में उस युवक को पति के रूप में वर लिया है।"

तब अश्वपति ने नारद से पूछा—"मुनिवर, आप सब कुछ जानते हैं। यह बताइये कि सत्यवान कैसा व्यक्ति है? उसके रूप, गुण एवं शील कैसे हैं?"

"राजन्, द्युमत्सेन का पुत्र अपने माता-पिता जैसे सत्यव्रत है। वह घोड़ों के चित्र अच्छे ढंग से तैयार करता है। इसलिए उसे चित्राश्व भी कहते हैं। वह सुंदरता में अश्विनी देवताओं की समता रखता है। वह चरित्रवान भी है, पर उसकी आयु अब केवल एक वर्ष मात्र है। आज से ठीक एक वर्ष बाद उसका जीवन समाप्त होने को है।" नारद ने उत्तर दिया।

इस बात पर राजा अश्वपति घबराया और बोला—"बेटी, उस अल्प आयुवाले युवक को छोड़ किसी दूसरे युवक को क्यों वर न लेती?"

"पिताजी, मैंने एक बार जिसको हृदयपूर्वक वर लिया है, वह चाहे अल्प आयु का हो, या दीर्घायु हो! चाहे गुणवान हो या चरित्र हीन हो। मगर किसी अन्य को वर लेना संभव नहीं है। मैं सत्यवान को छोड़ किसी दूसरे युवक को वर नहीं सकती। आप कृपया मेरा विवाह उसी के

करने का निश्चय किया। सावित्री को साथ ले अपने बन्धु एवं परिवार के साथ द्युमत्सेन के आश्रम में पहुँचा। वहाँ से पैदल आश्रम के भीतर प्रवेश किया।

वृद्ध द्युमत्सेन एक सालवृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। अश्वपति ने द्युमत्सेन के पास जाकर कहा–"महाराज, मेरी पुत्री सावित्री का आपके पुत्र सत्यवान के साथ विवाह करने का निश्चय करके आया हूँ। आप कृपया इसे अपनी पुत्र-वधू के रूप में स्वीकार कीजिये।"

"हे राजन, हम लोग राज्य खोकर इस जगल में निवास करते हैं। आपकी पुत्री कोमल स्वभाव की है। क्या वह हमारे साथ कष्ट झेल सकती है?" द्युमत्सेन ने समझाया।

"सुख और दुख मनुष्यों के अधीन नहीं होते। यह बात मेरी पुत्री भली भांति जानती है। हमने इस पर खूब विचार किया है। मेरी पुत्री और आपके पुत्र एक दूसरे के योग्य हैं। इसलिए हम यह रिश्ता क़ायम करेंगे।" अश्वपति ने कहा।

इस पर द्युमत्सेन बड़ा प्रसन्न हुआ, अपने आश्रम के सभी मुनियों को बुलाकर एक अच्छे मुहूर्त में सावित्री और सत्यवान का विवाह संपन्न किया। इसके बाद अश्वपति अपने नगर को लौट गया।

साथ कर दीजिये।" सावित्री ने निवेदन किया।

नारदमुनि ने भी राजा अश्वपति से कहा–"राजन, तुम्हारी पुत्री दृढ़ निश्चयवाली है। उसके विचार को बदलना संभव नहीं है। आज के राजकुमारों में सत्यवान की समता कर सकनेवाला दूसरा कोई नहीं है। तुम सावित्री का विवाह उसके साथ कर दो। यदि उसका भाग्य प्रबल रहा तो सत्यवान दीर्घायु भी हो सकता है! आप लोगों का शुभ हो।" ये शब्द कहकर नारद स्वर्ग की ओर चल पड़ा।

नारद के कहे अनुसार अश्वपति ने अपनी पुत्री का विवाह सत्यवान के साथ

सर्प का सर ऊपर आया। उसे देख युवक डर गया और चार-पाँच क़दम पीछे गया।

"मुझे देख डरते क्यों हो? मैं किसी की हानि नहीं करता। तुम यहाँ पर क्या करते हो?" महा सर्प ने युवक से पूछा।

युवक ने अपनी यात्रा का कारण बताया।

"भाई, तुम उस साधु से मेरा भी तो सवाल पूछो न? मैंने आज तक किसी की कोई हानि नहीं की है! फिर भी एक हज़ार साल से मैं इस नदी में बन्दी क्यों हूँ? मुझे स्वर्ग क्यों नहीं मिलता? यह सवाल तुम साधु से पूछो!" महा सर्प ने कहा।

"मुझे अगर यह नदी पार कराओगे तो मैं तुम्हारा सवाल ज़रूर साधु से पूछूंगा।" युवक ने उत्तर दिया।

महा सर्प ने उस युवक को अपनी गर्दन पर बिठाकर नदी पार कराया। वह पश्चिमी पहाड़ पर चढ़ गया। पहाड़ पर उसे एक बहुत ही पुराना नगर दिखाई पड़ा। नगर के बीच ऊँचे प्राकारोंवाला एक विशाल भवन था। वहाँ पर युवक ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि साधु महाराज उसी भवन में रहते हैं।

युवक को बड़ी आसानी से ही साधु महाराज के दर्शन हुए।

युवक ने साधु के सामने साष्टांग दण्डवत् करके कहा—"साधु महाराज! मैं

अपनी तरफ़ से तथा दूसरों की तरफ़ से आप से चार सवालों का जवाब जानना चाहता हूँ। मैं इसी के लिए बड़ी दूर से आया हूँ।"

"मैं सिर्फ़ तीन सवालों का ही जवाब देता हूँ। इसलिए तुम किसी के भी सवाल क्यों न हो, सिर्फ़ तीन सवाल मुझसे पूछो।" साधु ने जवाब दिया।

युवक थोड़ी देर तक सोचता रहा, तब अपने सवाल को छोड़ बाक़ी तीनों के सवाल पूछे। साधु ने तीनों सवालों के उचित जवाब दिये। युवक फिर से साधु के चरणों में प्रणाम करके लौट आया।

जब वह नदी के किनारे पहुँचा, तब उसने देखा कि सर्प उसी का इंतजार कर रहा है।

"क्या तुमने मेरे सवाल का जवाब जान लिया?" महा सर्प ने पूछा।

"हाँ, हाँ! जान लिया है! तुम अगर दो अच्छे काम करोगे तो तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी!" युवक ने उत्तर दिया।

"क्या हैं वे दो अच्छे काम?" सर्प ने बड़ी आतुरता से पूछा।

"एक तो यह है कि मुझे नदी पार कराओ।" युवक ने कहा।

महा सर्प ने युवक को नदी पार करा कर पूछा–"अब बताओ, दूसरा अच्छा काम क्या है?"

"सुनते हैं कि तुम्हारे सर पर एक मणि है, जो अंधेरे में चमकता है! तुम्हें उसे त्यागना होगा।" युवक ने समझाया।

महा सर्प ने सर झुका कर कहा–"इसे तुम्हीं निकालो।" युवक ने सर्प के सर से उस मणि को निकाला।

तुरंत सर्प एक गंधर्व के रूप में बदल गया। आसमान में उड़ते हुए बोला–"इस मणि को तुम्हीं रख लो।" ये शब्द कहते वह गंधर्व बादलों की ओट में चला गया।

इसके थोड़े दिन बाद युवक बूढ़े के घर पहुँचकर बोला–"दादा, तुम्हारे नींबू के पेड़ के नीचे बहुत सारे सोना और चांदी है। उसे खोद कर निकालोगे तो तुम्हारे पेड़ में फल लगेंगे। साधुमहाराज ने यही बताया है।"

दूसरे ही क्षण बूढ़े और उसके पुत्र ने पेड़ के नीचे की मिट्टी खोदनी शुरू की। सचमुच पेड़ के नीचे चांदी और सोना गाढ़ा गया था। मगर वे दोनों उसे बाहर नहीं निकाल पाये। इसलिए युवक ने भी उनकी मदद की। तब जाकर चान्दी और सोना बाहर निकाला गया।

बूढ़े ने कृतज्ञता भरे शब्दों में कहा–"बेटा, हम तुम्हारे बड़े ऋणी बन गये हैं। इसलिए इसमें से तुम जितना सोना और चांदी ले जा सकता हो, उतना लेते जाओ।"

अपने पिता के चले जाने के बाद सावित्री ने अपने क़ीमती वस्त्र और आभूषणों को उतारा। वल्कल पहन कर शारीरिक श्रम करने लगी। वह रात-दिन अपने सास-ससुर और पति की सेवा करने लगी।

सावित्री रोज़ यह हिसाब करती गयी कि उसके पति की आयु एक एक दिन घटती जा रही है। नारद के कहे अनुसार जब उसके पति की आयु चार दिन शेष रह गयी, उस दिन से उसने तीन दिन का उपवास शुरू किया।

"बेटी, तुम सुकुमारी हो। तुमने ऐसा कठिन व्रत क्यों प्रारंभ किया? मैं तुमसे कैसे कहूँ कि तुम यह व्रत बंद कर दो।" द्युमत्सेन ने सावित्री से कहा।

"दृढ़ निश्चय हो तो कठोर से कठोर कार्य भी सफलतापूर्वक संपन्न किये जा सकते हैं। मैंने इसी दृढ़ निश्चय के साथ यह व्रत शुरू किया है।" सावित्री ने अपने ससुर से कहा।

सावित्री को उपवास की थकावट की अपेक्षा अपने पति की मृत्यु की चिंता ज्यादा सताने लगी। इस तरह तीन रातें व्यतीत हो गयीं। सत्यवान की ज़िंदगी के अंतिम दिन का सूर्योदय भी हुआ।

उस दिन सावित्री ने सूर्योदय के होते ही आग जलाकर होम किया अपने सास-ससुर

तथा आश्रम के अन्य व्यक्तियों को प्रणाम किया। सबने उसे आशीर्वाद दिया—"दीर्घ सुमंगली भव!" इसके बाद वह अपने पति की मृत्यु के बारे में सोचते चिंता मग्न बैठी थी।

"बेटी, तुम्हारा व्रत समाप्त हो गया है। अब खाना क्यों नहीं खाती?" सास-ससुर ने सावित्री से पूछा।

"इस व्रत के लिए सूर्यास्त होने के बाद ही खाना खाया जा सकता है।" सावित्री ने उत्तर दिया।

सत्यवान समिधा, फल-फूल लाने के लिए कुल्हाड़ी कंधे पर डाल कर जंगल की ओर निकलने लगा। तब

सावित्री ने उसके निकट जाकर कहा–"मैं भी आपके साथ चलना चाहती हूँ। आज आपको छोड़ अलग रहना नहीं चाहती।"

"पगली! तुम नहीं जानती कि जंगल कैसा भयंकर होता है! जंगल के रास्ते में कांटे और कंकड़ होते हैं, अलवा इसके तीन दिन तक उपवास करके तुम थकी-मांदी हो!" सत्यवान ने समझाया।

"उपवास की वजह से मुझे थकावट महसूस नहीं होती। आज न मालूम क्यों, जंगल में घूमने की मेरी इच्छा हो रही है। आप कृपया मना न कीजियेगा।" सावित्री ने कहा।

"तुम्हारी इच्छा! मेरे माता-पिता मान जाये तो मेरे साथ चल सकती हो! ताकि इसका दोष मुझ पर न हो!" सत्यवान ने कहा।

सावित्री ने अपने ससुर के पास जाकर पूछा–"मेरे यहाँ आये एक वर्ष पूरा होनें को है। मगर जंगल देखने की मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई। आज मुझे अपने पति के साथ जाने की अनुमति दीजिये।" सावित्री ने अपने ससुर से कभी कुछ न पूछा था। इसलिए वह इनकार न कर सका और उसने अनुमति दे दी।

सास-ससुर की अनुमति लेकर अपने मन की व्यथा को छिपाये, प्रकट रूप में प्रसन्नता के साथ वह सत्यवान के पीछे जंगल की ओर चल पड़ी। सत्यवान सावित्री को जंगल के सुंदर दृश्यों को दिखाते आगे बढ़ रहा था; पर सावित्री को ऐसा प्रतीत होता था, मानो उसका पति अभी मर गया हो।

सत्यवान फूल चुनकर लकड़ी काटने लगा। थोड़ी ही देर में उसे थकावट महसूस हुई। सारे शरीर में पसीना छूटने लगा। उसने कुल्हाड़ी एक ओर फेंक दी और सावित्री के निकट जाकर कहा–"मेरा सर फटा जा रहा है। शरीर कांप रहा है। मैं थोड़ी देर लेटना चाहता हूँ।"

सावित्री ने सत्यवान के सर को अपनी जांघ पर रखा। सत्यवान लेट गया। कुछ ही क्षणों में सावित्री ने सत्यवान के समीप एक आकृति को देखा। वह व्यक्ति काला था, उसकी आँखें लाल थीं। उसके शरीर पर नीले वस्त्र थे और हाथ में रस्सा था। देखने में वह भयंकर लग रहा था।

उस व्यक्ति को देखते ही सावित्री ने सत्यवान का सर नीचे रखा। खड़े होकर उसे प्रणाम करके पूछा—"महाशय, तुम कौन हो? क्यों आये हो?"

"बेटी! मैं काल हूँ। तुम प्रतिव्रता हो, इसलिए मुझे देख सकी। सत्यवान की आयु समाप्त हो गयी है। वह बड़ा धर्मात्मा है। इसलिए उसे ले जाने के लिए मैंने दूत को नहीं भेजा, बल्कि स्वयं चला आया।" इन शब्दों के साथ यम ने अपने रस्से से सत्यवान के शरीर में से अंगूठे के बराबर जीव को खींच लिया और दक्षिणी दिशा में चल पड़ा।

सावित्री ने अपने पति के शरीर को सुरक्षित रखा और वह यम के पीछे चल पड़ी। यम ने उसे लौट जाने को कहा। मगर सावित्री ने बताया कि उसका पति जहाँ जायगा, वह भी वहीं जायगी और यही उसका धर्म है।

यम ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम अपने पति के प्राणों को छोड़ कोई वर माँग लो।"

"मेरे ससुर वृद्ध और कमज़ोर हो गये हैं। उन्हें दृष्टि और शक्ति प्रदान कीजिये।" सावित्री ने निवेदन किया। यम ने मान लिया। मगर फिर भी सावित्री यम का अनुसरण कर रही थी, उसे वापस लौटाने के ख्याल से यम ने सावित्री से दूसरा वर माँगने को कहा। इस बार सावित्री ने अपने ससुर को राज्य माँगा, यम ने मान लिया।

फिर सावित्री को अपना अनुसरण करते देख यम ने एक और वर माँगने को कहा। सावित्री ने अपने पिता के लिए पुत्र

माँगा । यम ने उसे सौ पुत्रों के पैदा होने का वर दिया ।

इस बार भी सावित्री को वापस न लौटते देख यम ने चौथा वर माँगने को कहा । सावित्री ने उसे सत्यवान के द्वारा सौ पुत्र पैदा होने का वर माँगा ।

"तुम्हें सौ पुत्र पैदा हो जायेंगे । अब लौट जाओ ।" यम ने कहा ।

"तब तो मुझे अपने पति के प्राण लौटा दीजिये ।" सावित्री ने पूछा ।

यम सत्यवान के प्राण छोड़कर चला गया । सावित्री अपने पति के शरीर के पास लौट आयी और उसके सर को अपनी जांघ पर रखकर बैठ गयी । थोड़ी देर बाद सत्यवान ने आँखें खोलकर कहा– "मैं बड़ी देर तक सो गया हूँ न ? मैंने सपना देखा कि कोई काला आदमी मुझे दूर तक अपने साथ ले गया है ।"

"ये सारी बातें मैं आपको बाद समझाऊँगी । रात होने को है, आश्रम को लौट जायेंगे ।" सावित्री ने कहा ।

सत्यवान के साथ सावित्री आश्रम को लौट आयी । उधर आश्रम में द्युमत्सेन को अचानक दृष्टि प्राप्त हो गयी थी । अंधेरा होने पर भी अपने पुत्र और पुत्र वधू को लौटते न देख वह घबराया । अपनी पत्नी को साथ ले उन्हें पुकारते हुए जंगली की ओर चल पड़ा ।

इतने में सावित्री और सत्यवान लौट आये । तब तक आश्रम में अनेक लोग आ पहुँचे । सावित्री ने उन सबको वह सारी कहानी कह सुनायी ।

यम के दिये हुए वर व्यर्थ नहीं हुए । द्युमत्सेन को उसका राज्य वापस मिल गया । अश्वपति और सावित्री तथा सत्यवान के भी पुत्र हुए ।

मार्कंडेय मुनि ने पांडवों को यह कहानी सुनाकर कहा–"इसी तरह द्रौपदी के पातिव्रत्य के कारण तुम लोगों के कष्ट भी एक दिन दूर हो जायेंगे ।" इसके बाद मार्कंडेय मुनि अपने रास्ते चला गया ।

शिवपुराण

[१२]

कुमार स्वामी ने ताराकासुर के साथ अनेक राक्षासों का वध किया, तब कुछ समय तक स्वर्ग में ही रहा। फिर उसके मन में पार्वती और परमेश्वर की सेवा करने की इच्छा हुई। इसलिए कैलास में आकर वहीं रह गया।

एक दिन उसके पास नारदमुनि आया। कुमारस्वामी ने नारद का अतिथि-सत्कार करके पूछा–"मुनिवर, जगत के विशेष समाचार हों तो सुनाइये।"

"तुम्हारी कृपा से सभी लोकों के लोग सुखी हैं। तुमने राक्षसों का वध किया, इसलिए यज्ञ आदि बिना रोक-टोक के चल रहे हैं। लेकिन मैं तुम्हें एक समाचार सुनाने आया हूँ। यहाँ से अनति दूर में भीलपुर नामक एक गांव है। वहाँ पर पुलिंद नामक एक भील राजा रहता है। वह शिव भक्त है। उसे बहुत समय तक कोई संतान नहीं हुई। मगर एक दिन उसे जंगल में एक लड़की मिली। उसने उस शिशु को लाकर अपनी पत्नी के हाथ सौंप दिया। उस दंपति ने उस शिशु का नाम करण वल्ली किया। उसे लाड़-प्यार से पालते गये। वल्ली के सौंदर्य का वर्णन करना मेरे लिए संभव नहीं है। एक बार वार्तालाप के संदर्भ में ब्रह्मा ने मुझसे कहा था कि वल्ली तुम्हारी पत्नी होगी। इसलिए तुम उसके साथ विवाह करके सुख भोगो।" नारदमुनि ने कहा।

इसके बाद नारदमुनि कुमारस्वामी से विदा लेकर भील राजा पुलिंद के पास गया। पुलिंद ने आदर के साथ मुनि को

अंतिम पृष्ठ का चित्र

बिठा कर पूछा–"मुनिवर, वल्ली के गुण और सौंदर्य के योग्य वर कहां प्राप्त होगा ?"

"इस कन्या के योग्य वर तो शिवजी के पुत्र कुमारस्वामी ही हो सकते हैं। उसे भी वल्ली से बढ़ कर योग्य पत्नी प्राप्त नहीं होगी। शीघ्र ही कुमारस्वामी वन विहार करने आयेगा और वल्ली को देख मोहित होगा। वह तुम्हारा जामाता बने, इससे बढ़कर तुम्हारा भाग्य क्या हो सकता है।" यह समाचार सुनाकर नारद चला गया।

नारद के मुंह से वल्ली के सौंदर्य का समाचार सुनने के बाद कुमारस्वामी का मन विकल हो गया। उसके साथ विवाह करने की इच्छा कुमारस्वामी के मन में बलवती हो गयी। उसके मन में यह संदेह भी हो गया कि यदि वह भील कन्या के साथ विवाह करना चाहे तो उसके माता-पिता स्वीकृति देंगे कि नहीं। उसने सोचा कि कोई निर्णय लेने के पहले उस कन्या को स्वयं देखना उचित होगा। इसलिए वह अपने परिवार को लेकर भीलपुर के समीप वन-विहार करने के लिए चल पड़ा।

नारद की बातों ने जैसे कुमारस्वामी के मन को विकल बनाया, वैसे वल्ली के मन को भी व्याकुल बनाया। वह कुमारस्वामी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। उसे यह संदेह भी होने लगा कि क्या वह उसकी जैसे निम्न जाति की कन्या के साथ विवाह करेगा। फिर वह यह सोचकर अपने मन को सांत्वना देने लगी कि उसके माता-पिता ने उसका केवल पालन-पोषण किया है। मगर उसका जन्म नहीं दिया है। उसने यह निर्णय भी कर लिया कि अगर कुमारस्वामी उसके साथ विवाह करने के लिए तैयार न हो जाये तो वह अपना देह-त्याग करेगी।

यह सोच कर वल्ली अपने माता-पिता से कहे बिना ही अपनी सखियों को साथ ले वन-विहार के लिए चल पड़ी। वह अपनी सखियों के साथ जाकर एक आम के पेड़ के नीचे बैठ गयी। तभी कुमारस्वामी

अपने अनुचरों के साथ आकर निकट के एक दूसरे वृक्ष के नीचे बैठ गया।

वल्ली की एक सखी ने कुमारस्वामी के पास जाकर कहा–"महाशय, आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? यह पुष्प-वन पुलिंद राजा की पुत्री वल्ली के विहार करने वाला प्रदेश है। यहाँ पर पुरुषों का आना मना है।"

ये बातें सुनते ही कुमारस्वामी का मन उत्साह से भर उठा। उसने वल्ली की सखी से कहा–"मेरा नाम कुमारस्वामी है। मैं शिव-पार्वती का पुत्र हूँ। हमारा निवास कैलास है। तुम अपनी वल्ली का कोई समाचार सुनाना चाहो तो सुनाओ।"

"राजा पुलिंद भीलों का राजा है। भीलपुर उनकी राजधानी है। वे एक शिव भक्त हैं। उनके कोई संतान नहीं है। इसी वन में उन्हें वल्ली प्राप्त हुई है। हमारे राजा ने वल्ली को पाल-पोसकर बड़ा किया है।" वल्ली की सखी ने समझाया।

"क्या तुम्हारी वल्ली का विवाह हो गया है?" कुमारस्वामी ने पूछा।

"रिश्ता तो तै हो गया है। अब केवल विवाह ही बाक़ी रह गया है।" सखी ने जवाब दिया।

कुमारस्वामी ने उद्विग्न होकर पूछा–"वह कैसा रिश्ता? वर कौन है?"

"कल हमारे राजा के पास नारद मुनि आये। वे हमारे राजा से यह कहकर चले गये कि शिवजी के पुत्र कुमारस्वामी आकर वल्ली के साथ विवाह करेंगे। तब से हमारी वल्ली कुमारस्वामी के लिए तड़प रही है। उसका हर एक पल एक युग के समान बीत रहा है। मैं उसकी व्यथा को देख नहीं पायी। इसलिए उसे वन विहार के लिए ले आयी। उसे हमने सामने दीखनेवाले उस आम के पेड़ के नीचे बिठाया है। तुम यहीं रहो, मैं वल्ली को यहीं बुला लाती हूँ।" यह कहकर वह सखी चली गयी और थोड़ी देर बाद वल्ली का हाथ पकड़े वहाँ पर ले आयी।

वल्ली को देखते ही कुमारस्वामी ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा–"वल्ली! तुम मेरे साथ चलो। हम दोनों विवाह करेंगे।"

"मेरे साथ आप विवाह करना चाहते हैं तो आप को मेरे माता-पिता की अनुमति लेनी होगी। हमें ऐसा काम नहीं करने चाहिये, जिससे लोगों की दृष्टि में हम गिर जायें। थोड़ी देर यहीं ठहर जाइये। मैं अपने माता-पिता की अनुमति लेकर लौटती हूँ।" इन शब्दों के साथ वल्ली ने कुमारस्वामी के हाथ से अपने हाथ को छुड़ाया और अपनी सहेलियों के साथ घर लौट आयी।

वल्ली से समाचार जानकर पुलिंद अपने परिवार के साथ कुमारस्वामी के पास आया। उसे बताया कि प्रात:काल के समय बढ़िया मुहूर्त है। तब कुमारस्वामी के परिवार को अपने यहाँ ले जाकर जनवासा में ठहराया। यह समाचार मालूम होते ही शिव-पार्वती भी वहाँ पर आ पहुँचे। कुमारस्वामी का विवाह संपन्न करके वर-वधू को साथ ले कैलास को लौट आये।

इस तरह कुछ समय बीत गया। उधर शोणितपुर में गजासुर का जन्म हुआ। बड़े होने पर उसने ब्रह्मा के प्रति घोर तपस्या करके अनेक वर पाये। इस तरह तीनों लोकों को अपने अधीन में लेकर शासन करने लगा। पर शिवभक्त गजासुर के शासन में लोग सुखपूर्वक रहने लगे। उन्हें किसी प्रकार की कठिनाइयाँ न थीं।

एक दिन नारद ने गजासुर के पास जाकर कहा–"गजासुर! तुम बड़े ही शिवभक्त हो! तुम शिवजी से यह वर क्यों नहीं माँगते कि वे सदा तुम्हारे हृदय में ही रहे?" गजासुर को यह विचार अच्छा लगा। उसने पूजा के बल पर शिवजी के दर्शन पाये और उनसे प्रार्थना की कि वे उसके हृदय में निवास करे। शिवजी ने स्वीकृति दी और लिंग के रूप में गजासुर के हृदय में वास करते हुए उसकी मानसिक पूजाएँ प्राप्त करता रहा।

१२३. स्वयंभूनाथ मंदिर, नेपाल

नेपाल की राजधानी खाट्मांडु में स्थित यह एक बौद्ध चैत्य है। इसमें स्वयंभूनाथ नामक एक सिद्ध की अस्थियाँ निक्षिप्त हैं। ऊपर के छत्र पर सोने का पानी चढ़ाया गया है।

Photo by Suraj N. Sharma
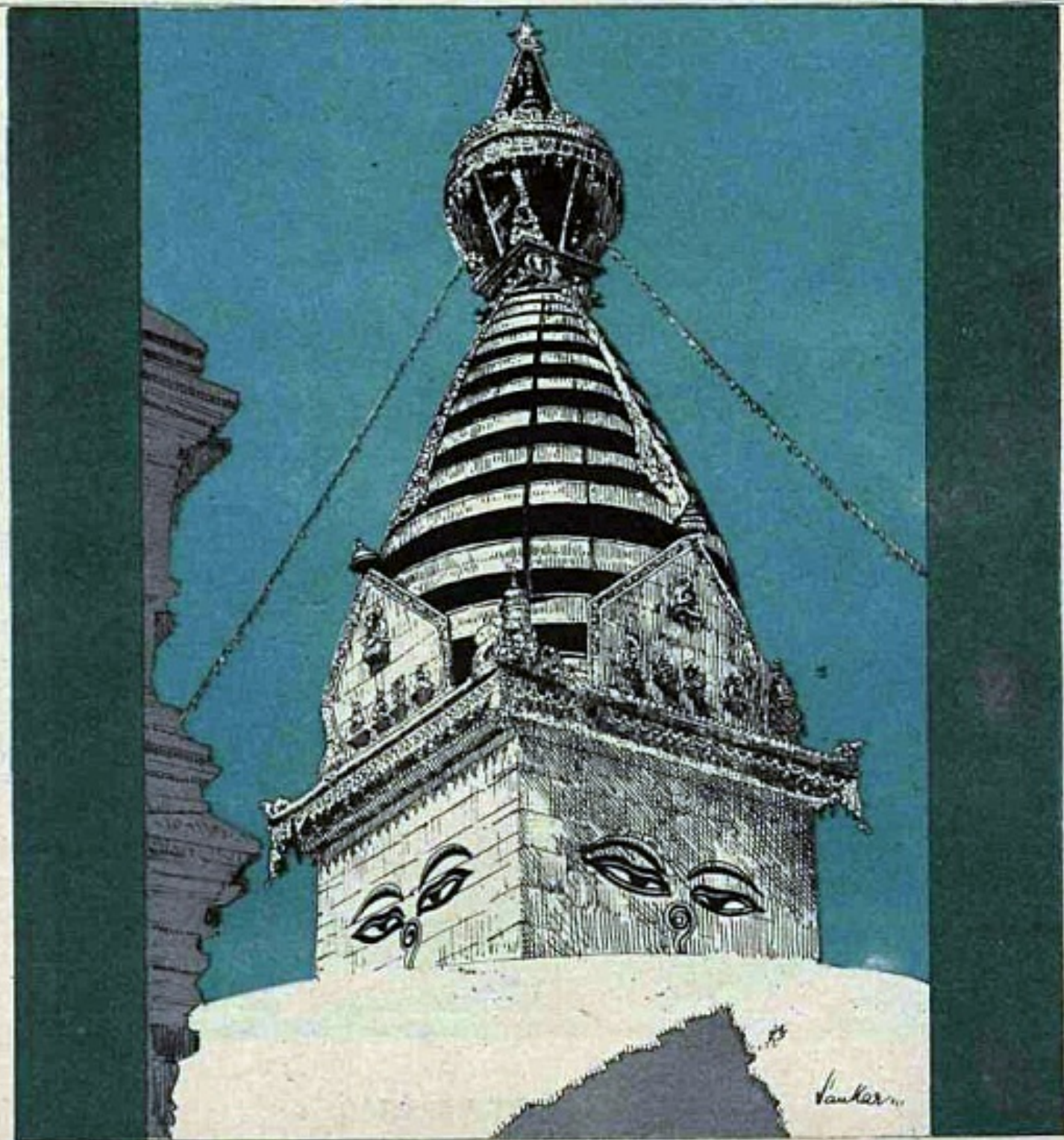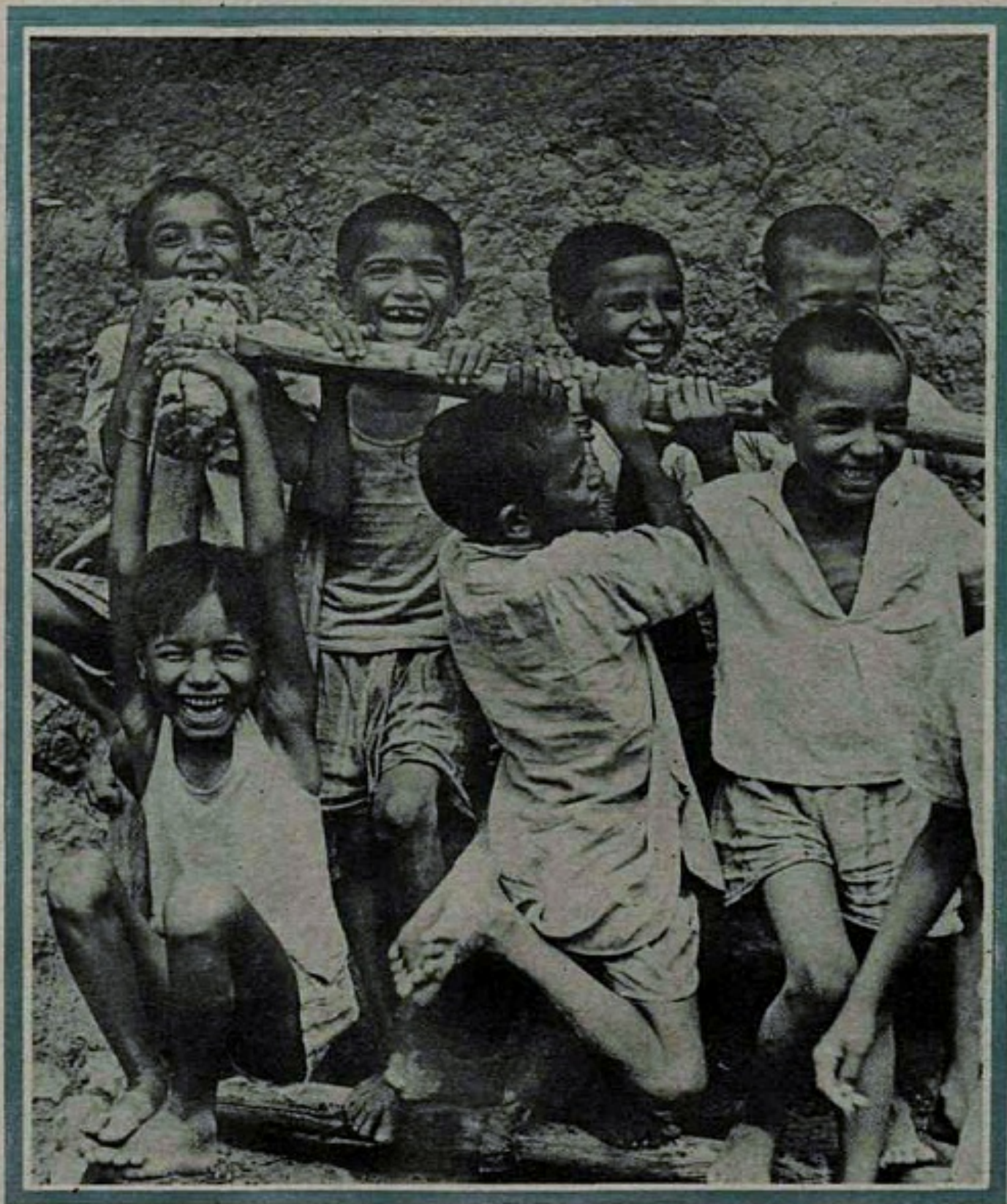
पुरस्कृत
परिचयोक्ति

देखकर बच्चों का यह रंग

प्रेषक:
शान शैलेन्द्र

Photo by Suraj N. Sharma

मिर्चपुर
त. हांसी, हिस्सार

बूढ़ों ने भी अपनाया यह ढंग

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

Photo by Suraj N. Sharma
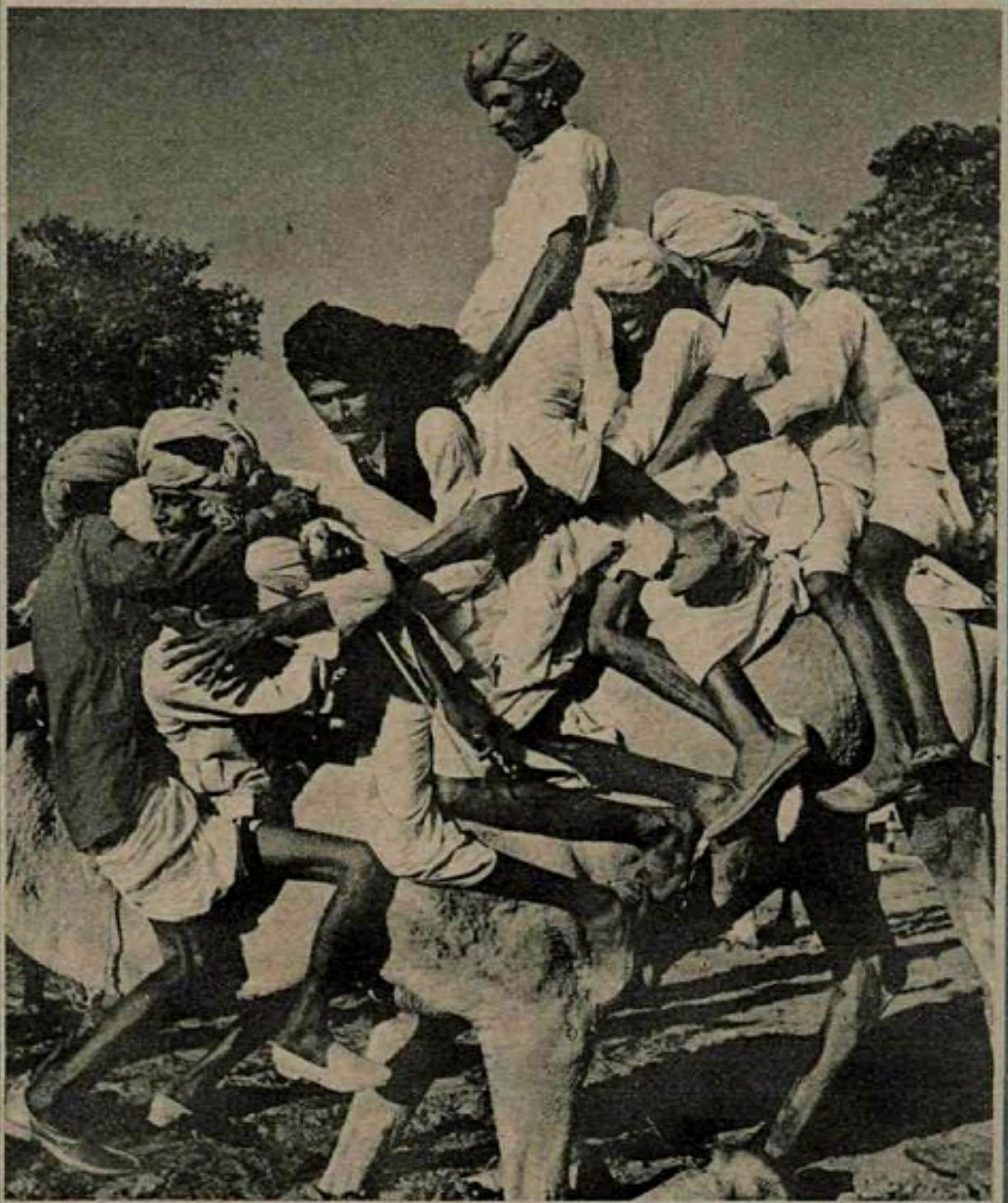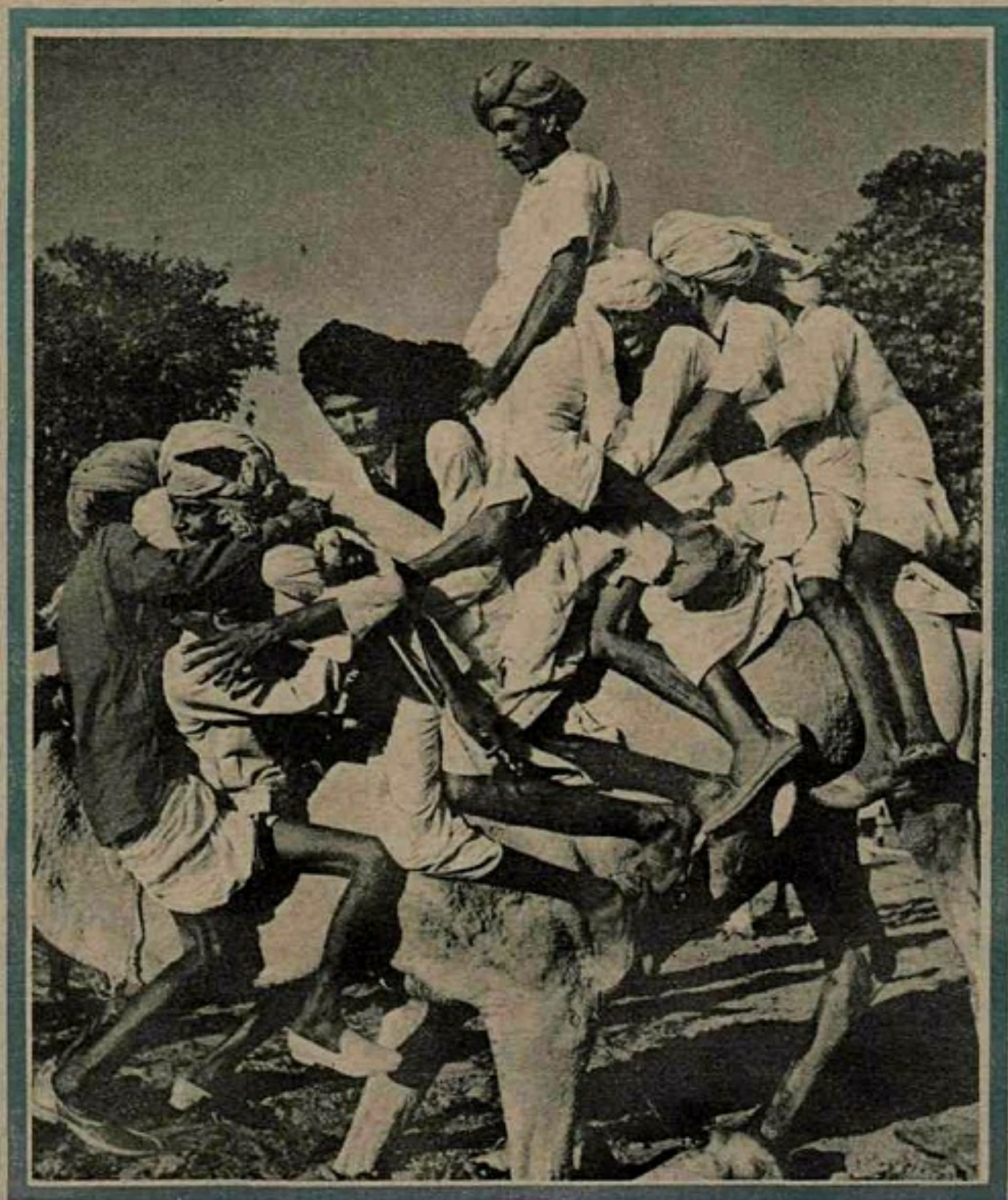
मिर्चपुर
त. हांसी, हिस्सार

बूढ़ों ने भी अपनाया यह ढंग

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

वह टॉनिक जो केवल भूख बढ़ाती है, अधूरा काम करती है

इनक्रिमिन*-टोली में आ कर...
बढ़ना सीखो भूख जगा कर!

*इनक्रिमिन
टॉनिक

* अमेरिकन सायानमिड कम्पनी का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क

सिटास-INC. 21-500 HI

Statement about ownership of CHANDAMAMA (Hindi)
Rule 8 (Form IV), Newspapers (Central) Rules, 1956

1.	*Place of Publication*	:	'CHANDAMAMA BUILDINGS' 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani, Madras-26
2.	*Periodicity of Publication*	:	MONTHLY 1st of each calendar month
3.	*Printer's Name*	:	B. V. REDDI
	Nationality	:	INDIAN
	Address	:	Prasad Process Private Ltd., 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani, Madras-26
4.	*Publisher's Name*	:	B. VISWANATHA REDDI
	Nationality	:	INDIAN
	Address	:	Chandamama Publications, 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani, Madras-26
5.	*Editor's Name*	:	CHAKRAPANI (A. V. Subba Rao)
	Nationality	:	INDIAN
	Address	:	'Chandamama Buildings' 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani, Madras-26
6.	*Name & Address of individuals who own the paper*	:	Chandamama Publications PARTNERS: 1. Sri B. Nagi Reddi, 2. Smt. B. Padmavathi, 3. Smt. B. Bharathi, 4. Sri B. V. Sanjaya Reddi (Minor), 5. Sri B. N. Suresh Reddi ("), 6. Sri B. V. Satish Reddi (")

I, B. Viswanatha Reddi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

B. VISWANATHA REDDI
Signature of the Publisher

1st *March* 1972

टैबी
और
जंगली आदमी

टैबी और डॉग पिकनिक पर जाते हैं।
डॉग, चलो इस द्वीप की खोज करें।

द्वीप में उनके भव्य स्वागत की तैयारी।
ये अजनबी हैं, इन्हें मार डालो!

शीघ्र ही...
डॉग, चलो जल्दी से भाग जाएँ।

मैं अब अधिक दौड़ नहीं सकता। मैं थक गया हूँ।

उन्हें बांध लो।
रुको! तुम्हारा सरदार गिर गया है।
OOOOGH

यह लो सरदार, स्वादिष्ट एनर्जी टैब्स जो फ़ौरन शक्ति देती हैं!
वाह! अब कितना अच्छा लगता है।

धन्यवाद, दोस्त। तुम हमारे सम्मानित मेहमान हो।
चलो जान बची लाखों पाये।

जल्दी वापस आना और कुछ और रंगीन टैब्स लाना।
तुम्हारा मतलब, एनर्जी टैब्स।

स्वादिष्ट नारंगी व अनन्नास की सुगंध वाली
ग्लैक्सोज़-डी
एनर्जी टैब्स
थकान फ़ौरन मिटाती है!

dCP/GLT/7a

CHANDAMAMA (Hindi) MAR. 1972 92 Paise Including Excise Duty Regd. No. M. 5452

शिवपुराण